RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म. प्र./भोपाल/261/2018-20/प्रकाशन तिथि 26 अगस्त 2018

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका सितम्बर 2018

मियाज़ाकी की जादुई दुनिया

मूल्य ₹ 50

विषुव

विषुव, 21 मार्च

अयनान्त, 21 जून

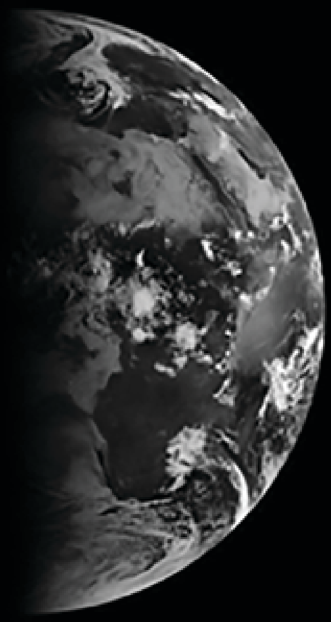

विषुव, 23 सितम्बर

साल में दो दिन ऐसे होते हैं जब दुनिया भर में दिन और रात लगभग बराबर होते हैं। मार्च 21 एक ऐसा ही दिन था। दूसरा दिन है 23 सितम्बर। इस दिन को विषुव या इक्विनॉक्स कहा जाता है। धरती पर हम कहीं भी खड़े हों इस दिन सूरज ठीक पूरब से उगता है और ठीक पश्चिम में डूबता है। उस दिन बाहर जाकर सूर्योदय और सूर्यास्त देखो। जहाँ तुम खड़े हो वहाँ से सूरज के उगने और डूबने की जगह देख लो। इस दिशा को याद रखने के लिए किसी बिल्डिंग या पेड़ की मदद ले सकते हो। इस तरह से पूरब और पश्चिम को चिन्हित करो। यदि किसी और दिन देखोगे तो पता चलेगा कि अन्य दिनों सूरज इसके थोड़ा उत्तर या थोड़ा दक्षिण दिशा में उगता या डूबता है। साल भर में दिन-और रात की लम्बाई भी बदलती रहती है। एक और खास दिन है 21 जून जब उत्तरी गोलार्ध (भारत इसी गोलार्ध में है) में सबसे लम्बा दिन होता है और दूसरा खास दिन है 21 दिसम्बर, जब साल का सबसे छोटा दिन होता है। इस दिन को अयनान्त या सॉल्सटिस् कहते हैं।

यानी साल में दो विषुव और दो अयनान्त होते हैं।

अंक 384 सितम्बर 2018

चकमक

अयनान्त, 21 दिसम्बर

इस बार

विषुव	2
मियाज़ाकी की जादुई दुनिया - सजिता नायर	4
क्यों क्यों?	7
दुनिया का सबसे तेज़ धावक 1 - उसैन बोल्ट	10
देसी कुत्ता - सुधेश उण्णीरामन	12
तुम भी बनाओ	14
रायबहादुर - चन्दन यादव	15
दुनिया का सबसे तेज़ धावक 2 - उसैन बोल्ट	18
पंचबटी - योगेश स्नेही	20
गणित है मज़ेदार!	22
दुनिया का सबसे तेज़ धावक 3 - उसैन बोल्ट	24
गहरा समुन्दर और... - चित्रा विश्वनाथन	27
चुटफुट - मुकेश मालवीय	30
झुनझुनी - शादाब आलम	32
झुनझुनी चढ़ती क्यों है? - प्रतिका गुप्ता	33
पहाड़ बाँधने का खेल - विनोद कुमार शुक्ल	34
मेरा पन्ना	38
माथापच्ची	41
चित्रपहेली	43
जगह बनाना - लोकेश मालती प्रकाश	44

सम्पादन
विनता विश्वनाथन

डिज़ाइन
कनक शशि

सम्पादकीय सहयोग
सी एन सुब्रह्मण्यम्
कविता तिवारी
सजिता नायर
गुल सारिका झा

सलाहकार
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
कमलेश यादव
ब्रजेश सिंह

एक प्रति : ₹ 50
वार्षिक : ₹ 500
तीन साल : ₹ 1350
आजीवन : ₹ 6000
सभी डाक खर्च हम देंगे

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चेक से भेज सकते हैं। एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण:
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य

ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म. प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017 email - chakmak@eklavya.in, circulation@eklavya.in; www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

मियाज़ाकी की जादुई दुनिया

सजिता नायर

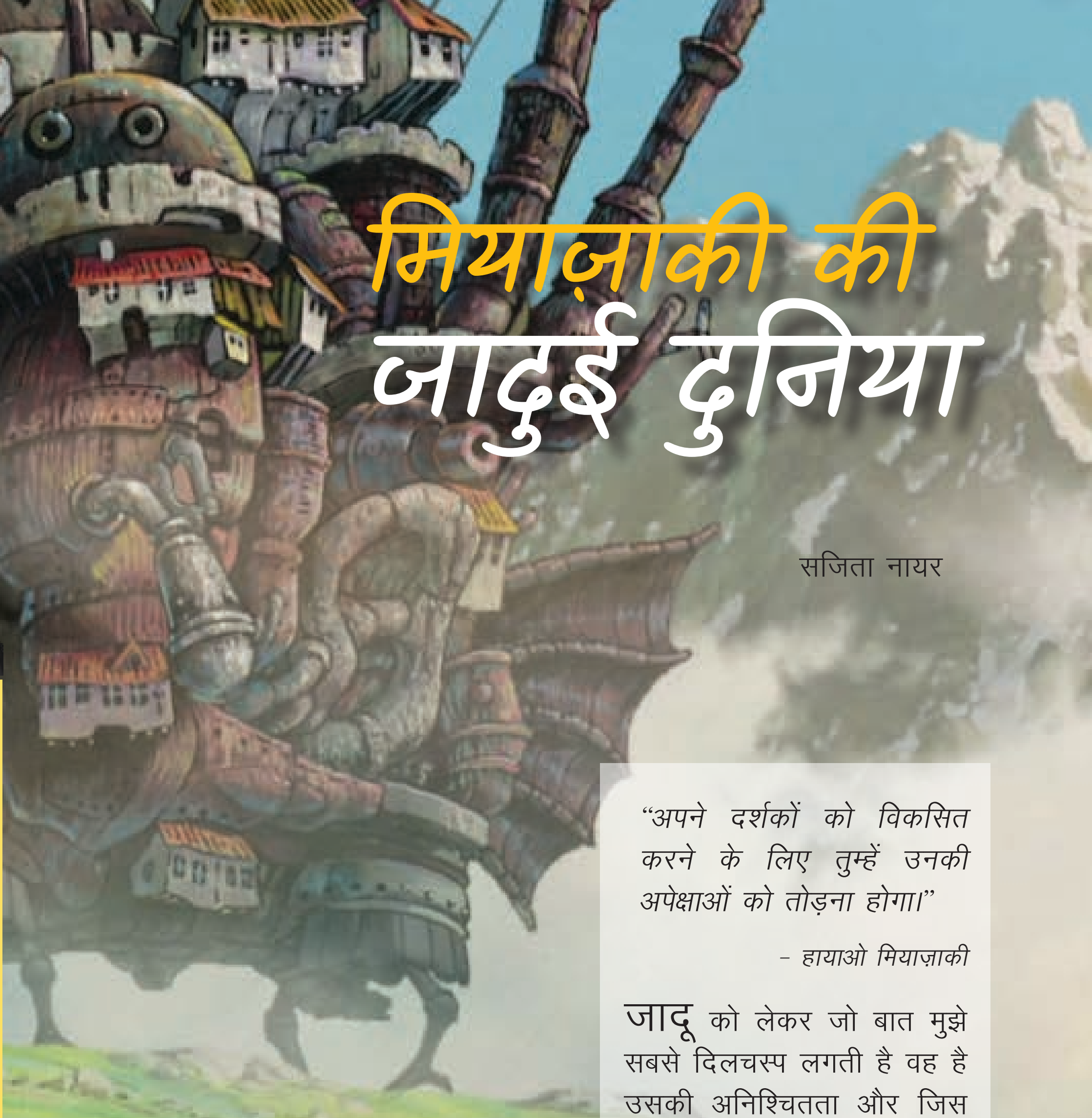

5 जनवरी 1941 को तोक्यो, जापान में जन्मे हायाओ मियाज़ाकी एनिमेशन की दुनिया के बड़े हस्ताक्षर हैं। वे महज़ एनिमेटर और फिल्म निर्देशक ही नहीं बल्कि फिल्म निर्माता, पटकथा लेखक, कहानीकार और मांगा (जापानी कॉमिक्स) कलाकार भी हैं। उन्होंने 60 के दशक की शुरुआत में तोई एनिमेशन कम्पनी के साथ अपना कैरियर शुरू किया था जो उस दौर में एशिया में एनिमेशन का सबसे बड़ा निर्मा ता था। तोई में ही उनकी मुलाकात इसाओ तखाता से हुई जो उनके करीबी दोस्त, सहयोगी और बिज़नेस पार्टनर बने। मियाज़ाकी और उनके करीबी दोस्त और सहयोगी इसाओ तखाता ने 1985 में स्टुडियो घिब्ली की स्थापना की। स्टुडियो घिब्ली आज दुनिया भर में एनिमेशन फिल्म के लिए मशहूर है। मियाज़ाकी की कई फिल्मों ने जापानी बॉक्स ऑफिस में रेकार्ड तोड़े हैं और उनको देश-विदेश मे कई पुरस्कारों से नवाज़ा गया है। इस क्षेत्र में मियाज़ाकी की अभूतपूर्व उपलब्धियों के लिए 2015 में उन्हें ऑस्कर पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया।

"अपने दर्शकों को विकसित करने के लिए तुम्हें उनकी अपेक्षाओं को तोड़ना होगा।"

- हायाओ मियाज़ाकी

जादू को लेकर जो बात मुझे सबसे दिलचस्प लगती है वह है उसकी अनिश्चितता और जिस तरह वो हमें इस सवाल के साथ छोड़ देता है कि यह "कैसे हुआ?" एनिमेशन की दुनिया में मियाज़ाकी की फिल्में एक जादू की तरह है और खुद मियाज़ाकी एक अनोखे जादूगर। मियाज़ाकी की कहानियाँ हमेशा ही अनिश्चितता और अजीबो-गरीब व खौफनाक मगर बेहद प्यारे जीवों से भरी होती हैं। ये हमें हर बार कुछ सवालों के साथ छोड़ देती हैं कि आखिर मियाज़ाकी इस कहानी तक कैसे पहुँच सके होंगे और इतनी खूबसूरती से हमारे सामने कैसे पेश कर पाए!

スタジオジブリ作品
STUDIO GHIBLI

“जब मैं कोई विलेन बनाता हूँ, मैं उसे पसन्द करने लगता हूँ, और वह विलेन एक ऐसा जीव बन जाता है जो सचमुच में बुरा नहीं है... बल्कि जो विलेन हैं वे नायकों से भी ज़्यादा मेहनत करते हैं...”

- हायाओ मियाज़ाकी

ऐसी बहुत सारी चीज़ें हैं जो मियाज़ाकी की फिल्मों को दूसरी एनिमेशन फिल्मों से अलग बनाती हैं। इनमें से एक है उनके अच्छे व बुरे पात्र। आमतौर पर जो फिल्में हम देखते हैं उनमें एकदम शुरुआत से ही अच्छे और बुरे पात्रों के बीच साफ अन्तर दिखता है। इसके उलट, मियाज़ाकी की फिल्मों में जैसे ही आप किसी पात्र के बारे में यह राय बनाने लगते हैं कि वो बुरा है, अचानक कोई मोड़ आ जाता है और आपकी राय बदल जाती है। उनकी फिल्में देखने के बाद मुझे महसूस हुआ कि वे हमें यह दिखाना चाहते हैं कि हम सभी अच्छे और बुरे गुणों के साथ पैदा हुए हैं। इस तरह उनकी कहानियाँ हमें उनके पात्रों के बारे में कोई नैतिक फैसला नहीं लेने देतीं।

ऐसा ही मेरा एक पसन्दीदा पात्र है *स्पिरिटेड अवे* फिल्म का ‘नो फेस’। हालाँकि शुरू-शुरू में नो फेस का हुलिया देखकर आपको लगता है कि वही विलेन है क्योंकि वो लोगों को उनकी मनचाही चीज़ें देकर अपनी ओर लुभाता है और फिर उनको खा जाता है। लेकिन कहानी जब आगे बढ़ती है तो नो फेस चिहिरो का पीछा कर उसे भी लुभाने की कोशिश करता है। वह उससे मुखातिब भी होती है मगर उसकी दी हुई सभी चीज़ें नहीं लेती। इसके चलते नो फेस उसे नहीं निगलता और वे दोस्त बन जाते हैं। फिर वह आपको एक नेक इंसान जैसा लगता है।

“इन्सानों में दोनों प्रवृत्तियाँ हैं - निर्माण की भी और विनाश की भी।”

- हायाओ मियाज़ाकी

यह कथन प्रिन्सेस मोनोनोके की मैडम इबोशी के काफी करीब दिखता है। एक तरफ मैडम इबोशी जंगल साफ करने को लेकर दृढ़ प्रतिज्ञ हैं ताकि उनके लोग जानवरों से परेशान हुए बिना लौह-अयस्क निकाल सकें। लेकिन दूसरी तरफ उन्होंने ऐसे लोगों की एक पूरी कॉलोनी बसाई है जिनको समाज में इज़्ज़त नहीं मिलती, जैसे कि कुष्ठ रोग के मरीज़ और वेश्यालयों में काम करने वाली औरतें। मैडम इबोशी उन लोगों में आत्मविश्वास जगाने में मदद करती हैं। जंगल काटने के पीछे उनकी मंशा यह है कि उनके लोग शान्तिपूर्वक रह सकें और अपने जीवन यापन के लिए लोहा बना सकें।

एक और बात जो मियाज़ाकी की फिल्मों को एक अलग पहचान देती है वह है प्रकृति और इन्सान के बीच का सम्बन्ध। प्रिन्सेस मोनोनोके की ही तरह उनकी ज़्यादातर फिल्में प्रकृति और इंसान के बीच के अस्थिर रिश्ते को दिखाती हैं। ऐसी ही एक और मिसाल है *वैली ऑफ द विंड्स* की नौसिका नाम की पात्र। इस फिल्म में जब नौसिका एक कीड़े को बचाने की कोशिश करती है तो उसके अब्बा उससे कहते हैं, “कीड़े-मकौड़े और इंसान एक ही दुनिया में नहीं रह सकते।” यह सुनकर वह मायूस हो जाती है और इसी वजह से राजकुमारी बनने के बाद वो भरसक कोशिश करती है कि कीड़े शान्तिपूर्वक जीवन जी सकें। वो कभी भी किसी कीड़े को नहीं मारती बल्कि जब वे बेहद गुस्से में होते तो उनको शान्त करने की कोशिश करती। उसके गाँव के बाशिन्दे भी उसके विचारों को मानते हैं और वे भी ऐसा ही करते हैं।

“मेरी कई फिल्मों में सशक्त महिला लीड रोल में होती है - बहादुर, आत्मनिर्भर लड़कियाँ जिन बातों पर दिल से यकीन करती हैं उनके लिए लड़ने से नहीं हिचकतीं। उनको किसी दोस्त या समर्थक की ज़रूरत ज़रूर होगी मगर किसी उद्धारक की नहीं।”

- हायाओ मियाज़ाकी

चिहिरो, नौसिका, प्रिन्सेस मोनोनोके, सॉफी हैटर, मैडम इबोशी जैसे पात्र ऐसी ही कुछ मिसाले हैं। चिहिरो जो लगता है कि आलसी और थोड़ी ज़िद्दी है, वो अपने मनोभावों पर काबू करती है और अपने माँ-बाप को भूतों से बचाने के लिए अपना सारा ज़ोर लगा देती है। यह जानते हुए कि वो अकेले जंगल को नहीं बचा सकती,

प्रिन्सेस मोनोनोके कभी हिम्मत नहीं हारती। वह जब भी इंसानों से लड़ती है निडर होकर लड़ती है। मैडम इबोशी के पात्र की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह अपने लोगों की हालत को गहराई से समझती हैं लेकिन कोई दया या सहानुभूति नहीं प्रदर्शित करतीं। और यह फर्क मियाज़ाकी की सभी फिल्मों में देखने को मिलता है। जहाँ आमतौर पर फिल्मों में पात्रों को एक-दूसरे से सहानुभूति होती है, मियाज़ाकी अपने पात्रों को लोगों की हालत समझने की संवेदना देते हैं और यही उनके पात्रों की आज़ादी की वजह भी है।

"लेकिन जापानी बच्चे, यह याद रखो...हवाई जहाज जंग के औज़ार नहीं हैं। ये मुनाफा कमाने के लिए भी नहीं हैं। हवाई जहाज तो खूबसूरत ख्वाब हैं। इंजीनियर इन ख्वाबों को हकीकत में ढालने का काम करते हैं।"

– द विंड राइज़ेस

मियाज़ाकी का परिवार मियाज़ाकी एयरप्लेन नाम से हवाई जहाज़ बनाने का काम करता था। उनको यह बात हमेशा नागवार लगी कि दूसरे महायुद्ध में जापान की भागीदारी से उनके परिवार ने मुनाफा कमाया। लेकिन उनको हवाई जहाज़ों से प्यार है और यही वजह है कि उनकी ज़्यादातर फिल्मों में हवाई जहाज़ या उड़ने वाले जन्तु या उड़ने वाले लोग देखने को मिलेंगे।

"एनिमेशन की रचना एक काल्पनिक दुनिया की रचना करने जैसा है। यह दुनिया उन लोगों की आत्मा को राहत देती है जो हकीकत की धारदार नोकों से जूझते-जूझते मायूस और परेशान हो चुके हैं।"

– हायाओ मियाज़ाकी

हाकुजडेन (द लेजेण्ड ऑफ व्हाइट सरपेंट) और *स्नो क्वीन* जैसी फिल्मों से मियाज़ाकी को अपनी फिल्मों के पात्रों के मनोभावों पर ध्यान केन्द्रित करने की प्रेरणा मिली। और यही कारण है कि उनके पात्रों से खुद को जोड़ पाना इतना आसान है क्योंकि वे बड़े नपे-तुले मनोभाव प्रदर्शित करते हैं – न कम न ज़्यादा। मिसाल के लिए, *स्पिरिटेड अवे* में जब चिहिरो सूअर में तब्दील हो चुके अपने माँ-बाप से मिलती है तो कुछ मिली-जुली प्रतिक्रियाएँ करती है। उनको देखकर वह खुश तो है लेकिन उनकी मदद न कर पाने की बेबसी उसे उदास भी करती है और साथ ही वो उन पर नाराज़ भी होती है क्योंकि उनकी वजह से ही वे इस स्थिति में फँस गए थे। इन सबके बीच वह बुरी तरह डरी हुई भी है क्योंकि वो लोग विचित्र जीवों से भरी जगह में फँसे हुए हैं। इस तरह की स्थिति में फँसी किसी किशोर बच्ची की तरह चिहिरो भी उन पर चीखती-चिल्लाती है और उनको फटकारती है और इस स्थिति से उनको बचाने की बात भी करती है। और फिर वह भाग जाती है। यह दृश्य न तो बहुत नाटकीय है और न ही बोझिल, बल्कि ये बिलकुल सहज-सा दृश्य है।

मियाज़ाकी के एनिमेशन की दुनिया उन तमाम एनिमेशनों से बिलकुल जुदा है जिनको मैंने अब तक देखा है। उनकी फिल्मों के हरेक फ्रेम में बारीकियाँ होती हैं जिनको देखना एक बेहद खूबसूरत अनुभव होता है। दृश्य किसी हड़बड़ी में नहीं पेश किए जाते। उनकी फिल्मों में हमेशा एक किस्म की खामोशी होती है जो आपको पात्रों से जुड़ने में मदद करती है। वे अपनी फिल्मों के लिए स्क्रिप्ट लिखने में यकीन नहीं करते। इसकी बजाय वे स्टोरीबोर्ड का इस्तेमाल करते हैं – यानी कहानी को एक कॉमिक्स की तरह बनाना और यह काम वे खुद करते हैं। इसका असर उनकी फिल्मों में साफ दिखता है। जब 2013 में *द विंड राइज़ेस* फिल्म के बाद मियाज़ाकी ने संन्यास लेने का फैसला किया था तो उनके चाहने वाले बड़े निराश हुए थे। लेकिन फिर 2016 में हमें खबर मिली कि उन्होंने अपनी नई फीचर फिल्म पर काम शुरू कर दिया है। इस फिल्म का हमें बेसब्री से इन्तज़ार है। चक मक

अनुवाद: लोकेश मालती प्रकाश

फूलों को अपना रंग कहाँ से मिलता है?

कुछ दिन पहले हमने बहुत से बच्चों से एक सवाल पूछा था – फूलों को अपना रंग कहाँ से मिलता है?

चौथी से लेकर दसवीं क्लास के कई बच्चों ने जवाब भेजे। अपने आसपास दिखने वाली चीज़ों और घटनाओं के बारे में हम कितने तरीकों से सोच सकते हैं यह इन जवाबों से समझ आता है। सहज दिखने वाली बातों पर सवाल पूछना, और उनके उत्तर अलग-अलग तरह से खोजना ही विज्ञान और दर्शन दोनों की शुरुआत है।

बच्चों के विविध जवाबों में से कुछ हमने पिछले अंक में छापे, कुछ इस बार छाप रहे हैं। इस बार हमने भी जवाब तैयार किया है।

चेहरे हैं ये रंग-बिरंगे,
जैसे निकले इनसे तरंगें,
खिली-खिली मुस्कान है,
ये बागों की जान हैं,
ये धरती पर ही जगमगाते,
पर इनके रंग कहाँ से आते?

कभी-कभी मुझे लगता कि,
ये शायद कहीं से रंग चुराते,
क्या इन्द्रधनुष की सड़कों पर,
जा-जाकर ये दौड़ लगाते,
ज़मीं के तारे बनकर ये
टिम-टिम, टिमटिमाते,
पर इनके रंग कहाँ से आते?

कल तो मैंने सोचा कि ये,
तितलियों से रंग उधार माँगकर,
पत्तों को मुँह चिढ़ाते हैं,
पेड़ों में फूलों के गाँव,
हवा के संग लहराते हैं,
शायद उनमें ये रंग हवाओं से ही आते हैं।

प्राची प्रियदर्शिनी, दसवीं, बिहार बाल भवन किलकारी, पटना, बिहार

तितलियाँ सूरज के पास उड़ रही होंगी जब वे जलकर राख हो गई होंगी। उनकी रंग-बिरंगी राख नीचे गिर गई होगी। उससे थोड़ी-सी राख फूलों पर गिरी होगी। और फूलों को अलग-अलग रंग मिल गए। ये है मेरा मत।

नूतन सूर्यवंशी, प्रगत शिक्षा संस्थान, फलटण, महाराष्ट्र

फूलों को रंग वर्णी लवक से मिलता है। ये वर्णी लवक अलग-अलग फूलों को रंगीन बनाते हैं। वर्णी लवक को क्रोमोप्लास्ट कहते हैं।

अरुन्धति, सातवीं, अज़ीम प्रेमजी स्कूल, मटली, उत्तराखण्ड

पहले पौधों की पत्तियों में पानी आता है, फिर पत्ती तने के सहारे और ऊपर जाती है। फिर उसमें अंकुर फूटने लगता है, फिर उसमें से फूल निकल आते हैं। फिर वो सूर्य की किरणों से अपना खाना बनाते हैं और उनको खाकर वो अपना रंग निकालते हैं।

खुशहाल सिन्हा, पाँचवीं, अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़

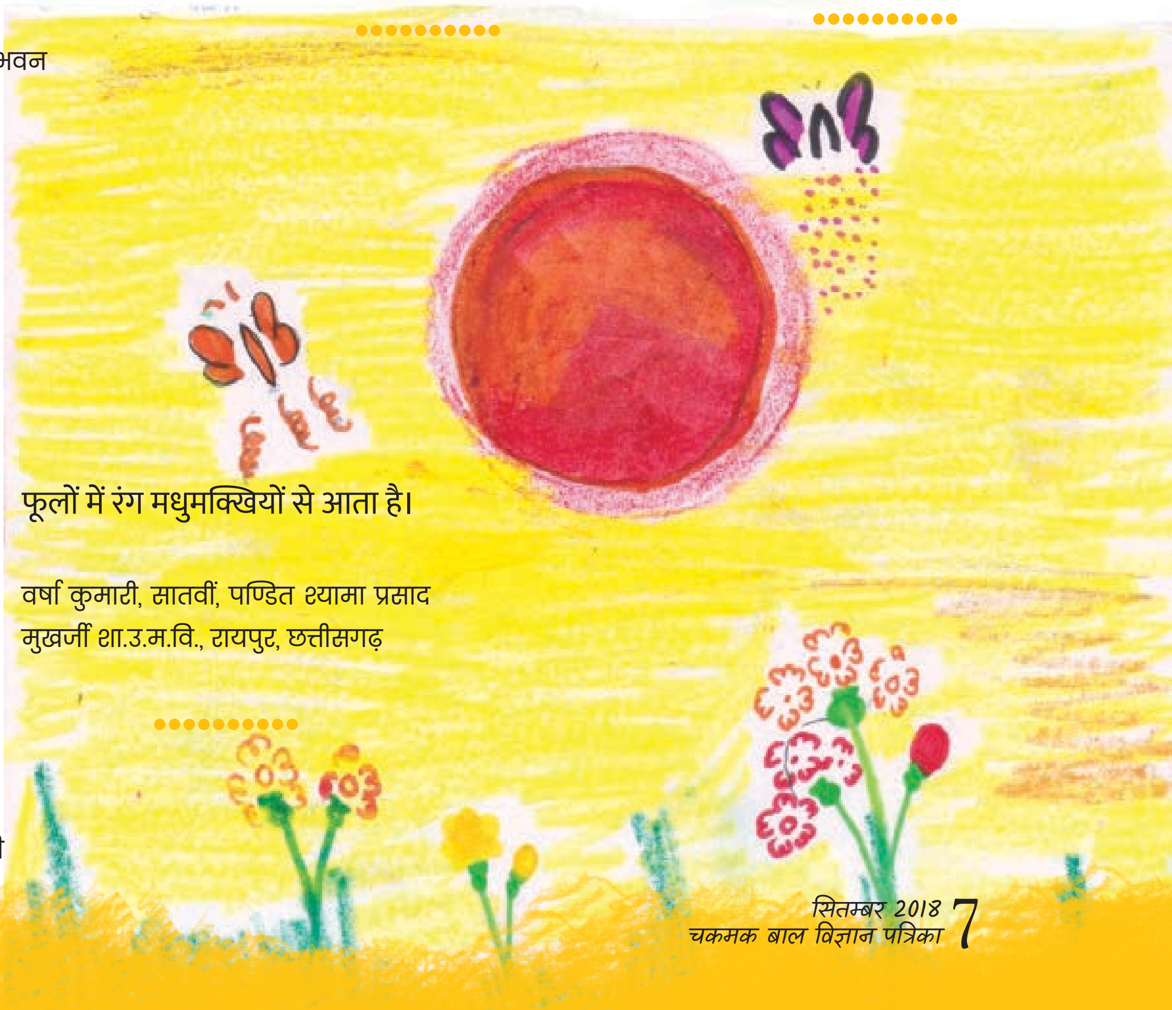

फूलों में रंग मधुमक्खियों से आता है।

वर्षा कुमारी, सातवीं, पण्डित श्यामा प्रसाद मुखर्जी शा.उ.मा.वि., रायपुर, छत्तीसगढ़

चित्र: नूतन सूर्यवंशी

फूलों का रंग

एक दिन टीना, मीनल, मोहन और जय बगीचे में बैठे हुए थे। मीनल ने फूलों की तरफ देखते हुए कहा, "दोस्तो, फूलों को अपना रंग कहाँ से मिलता है?"

टीना - मुझे लगता है कि बहुत पहले जब इन्द्रधनुष निकला था, तो उसकी रंगीन रोशनी से फूल रंगीले हो गए।
जय - मुझे लगता है कि तितलियों ने जब सफेद फूल देखे तो उन पर बैठकर उनसे अपना रंग बाँट लिया।
मोहन - मुझे तो लगता है कि एक दिन इन्द्रधनुष निकला और बारिश हुई। जब बारिश की बूँदों ने इन्द्रधनुष को छुआ तो वह रंगीन हो गई, और फिर जब बूँदों ने फूलों को छुआ तो फूल रंग-बिरंगे हो गए।

रिद्धिमा कश्यप, चौथी, डीपीएस, पटना, बिहार

चित्र : शाम्भवी कुमारी, पाँचवी डीपीएस पटना, बिहार

फूलों को लाल, जामुनी, नीला तथा बैंगनी एक विशेष रंगद्रव्य ज़ैन्थोसायैनिन द्वारा प्राप्त होता है। ये रंगद्रव्य फूलों के अणुओं में घुला होता है। दूसरे रंग जैसे पीला, नारंगी तथा हरा इत्यादि दूसरे प्रकार के रंगद्रव्य कैरोटिन द्वारा फूलों को मिलता है। इस प्रकार फूलों को रंग दो प्रकार के रंगद्रव्य द्वारा मिलते हैं।

नव्या सिंह, पाँचवीं, डीपीएस, पटना, बिहार

कमल पर लक्ष्मी देवी बैठती है तो फूल का रंग बदल जाता है।

सुहानी फरकले, छठी, राजा भोज शा.उ.मा. वि., भोपाल, म.प्र.

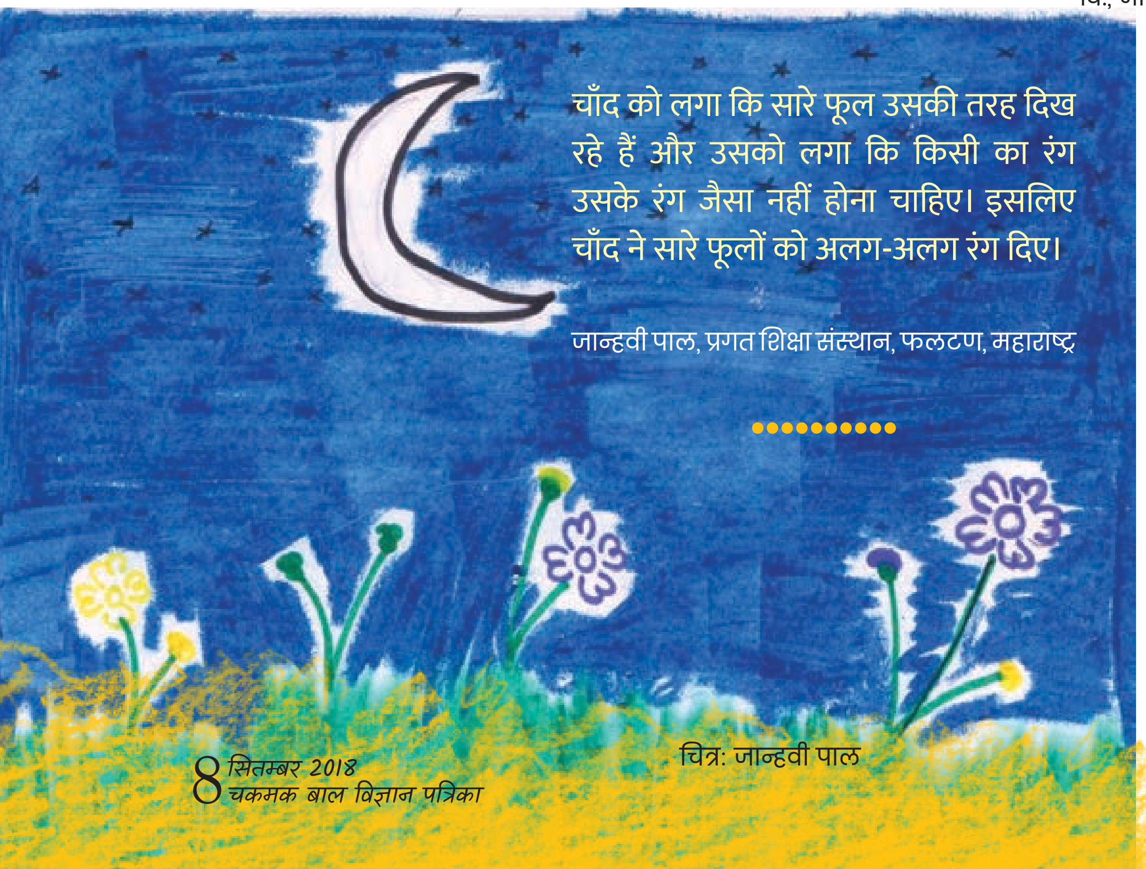

चाँद को लगा कि सारे फूल उसकी तरह दिख रहे हैं और उसको लगा कि किसी का रंग उसके रंग जैसा नहीं होना चाहिए। इसलिए चाँद ने सारे फूलों को अलग-अलग रंग दिए।

जान्हवी पाल, प्रगत शिक्षा संस्थान, फलटण, महाराष्ट्र

चित्र: जान्हवी पाल

फूलों को रंग अलग-अलग कारणों से मिलता है जैसे गुलाब के पौधों को रोपने के लिए हम गोबर डालते हैं, गोबर में एक पदार्थ होता है जो गुलाब के पौधों को रंग देता है। गाय या भैंस जैसा खाना खाते हैं वैसा ही फूलों का रंग होता है। गाय या भैंस पैरा खाता है, पैरा पीले रंग का होता है इसलिए गुलाब पीले रंग का होता है।

गंगेश्वरी साहु, सातवीं, अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़

हमारा जवाब

फूलों को अपना रंग कहाँ से मिलता है? क्या रंग फूलों में होते हैं, या उन पर गिरने वाली रोशनी में या हमारी आँखों में?

रंग-बिरंगे फूलों के रंगों का राज़ गहरा है। वैसे मज़े की बात यह है कि किसी फूल में हमें जो रंग दिखते हैं, ज़रूरी नहीं कि वही रंग दूसरे जानवरों, पक्षियों या कीटों को भी दिखें। रंगों को देख पाना हमारे आँखों की संरचना पर भी निर्भर करता है। शेर, मनुष्य, मधुमक्खी, सब को अलग-अलग रंग दिखते हैं।

पहले हम अपनी बात करें। हमारे आँखें किसी चीज़ को तब देख पाती हैं जब प्रकाश उस चीज़ पर पड़ती है और परावर्तित होकर हमारे आँखों तक आती है। प्रकाश वास्तव में कई रंगों का मिश्रण है। जब प्रकाश किसी चीज़ पर पड़ता है तो वह चीज़ प्रकाश के कुछ रंगों को सोख लेती है और कुछ रंगों को ही परावर्तित होकर हमारे आँखों तक आने देती है। जो रंग हम तक पहुँचता है, हम उसे उस चीज़ का रंग मान लेते हैं।

फूलों को अपना रंग कुछ रसायनों से मिलता है जो उनकी पंखुड़ियों में होते हैं। इन्हें वर्णक या पिगमैंट्स कहते हैं। ये वर्णक कई रासायनिक समूह के होते हैं - ऐन्थोसयैनिन्थो, कैरॉटिनॉइड्स, बीटालेइन्स इत्यादि। हरेक समूह में कई रसायन होते हैं जो रंगों की विविधता तय करते हैं। पर ये रसायन अपने आप में रंगीन नहीं होते। फूलों पर जब रोशनी गिरती है तो ये रसायन प्रकाश के वर्णक्रम के कुछ रंगों को सोख लेते हैं। यानी वे कुछ रंगों को हमारे आँखों तक पहुँचने से रोक लेते हैं। कुछ ही रंगों को वे परावर्तित करते हैं, यानी हमारी आँखों तक पहुँचने देते हैं। इस तरह जिन रंगों को वह परावर्तित करते हैं, फूल उन्हीं रंगों के दिखते हैं।

ऐन्थोसयैनिन के वर्णक फूलों में लाल, नीला या जामुनी रंग लाते हैं। कैरॉटिनॉइड्स और बीटालेइन्स के वर्णक पीला, नारंगी और लाल रंग ला सकते हैं। फूलों में पाए जाने वाले सारे वर्णक पौधे खुद बनाते हैं। इन वर्णकों की एक रोचक बात यह है कि ये सिर्फ फूलों को रंगीन बनाने का काम नहीं करते हैं। इसके अलावा इनकी पौधों में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ होती हैं। जैसे कि पत्तों और तनों में मौजूद कैरॉटिनॉइड्स प्रकाश संश्लेषण के लिए प्रकाश सोखते हैं और क्लोरोफिल को नुकसान पहुँचाने से बचाते हैं। ऐन्थोसयैनिन और बीटालेइन्स भी पौधे की सुरक्षा करते हैं – ऐन्थोसयैनिन ठण्ड के नुकसान से और बीटालेइन्स फफूँदों से।

ये बातें तो रंगीन फूलों की हुईं। सफेद फूलों के वर्णक के बारे में तो हमने बात ही नहीं की है। यह इसलिए कि इनमें यूँ तो कोई वर्णक होते ही नहीं हैं या बहुत ही कम होते हैं।

लेकिन बात यहाँ खतम नहीं होती । देखा गया है कि ये रंग फूलों का परागण करवाने वाले जन्तुओं को आकर्षित करने में काम आते हैं। इन जन्तुओं में से कीट सबसे महत्वपूर्ण हैं। लेकिन कई कीट, जैसे मधुमक्खियाँ हमारी तरह सिर्फ रंग नहीं देखतीं। वह पराबैंगनी (अल्ट्रावायोलेट) प्रकाश भी देख सकती हैं। इसलिए उन कीटों को हमसे अलग कई और रंग दिख सकते हैं। इन पराबैंगनी रंगों को कुछ खास किस्म के वर्णक परावर्तित करते हैं। तो कीटों का फूलों को देखने का नज़रिया ही हमसे अलग है।

तो भई, फूलों के रंग का राज़ कुछ पकड़ में आया कि नहीं!

क्रीपिंग ज़िनिया नामक पौधे को हम जैसे देखते हैं (बाँई) और उसके पराबैंगनी रंग जैसा कीटों को दिखते हैं (दाईं)।

दुनिया का सबसे तेज़ धावक - 1

मेरी पहली जीत

उसैन बोल्ट

उसैन आज दुनिया के सबसे तेज़ दौड़ने वाले इन्सान माने जाते हैं। 2008, 2012 और 2016 के ओलम्पिक में उन्होंने 100 मीटर दौड़ में स्वर्ण पदक जीते थे। उन्होंने 9.58 सेकेन्ड में 100 मीटर की दौड़ पूरा किया है। उनकी आत्मकथा फास्टर दैन लाइट्निंग, माइ ऑटोबायोग्राफी के कुछ अंश पढ़ो।

"तुम स्प्रिन्टर बन सकते हो," उन्होंने कहा।

मुझे उनकी बात समझ नहीं आई और मैंने उस पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया।

"जब तुम बॉलिंग रन-अप में भागते हो तो तुम्हारी स्पीड गज़ब की तेज़ होती है", उन्होंने कहा। "तुम वाकई तेज़ दौड़ते हो, बहुत तेज़।"

लेकिन मुझे उनकी बात पर भरोसा नहीं था। रिकार्डो के साथ दौड़ने के अलावा मुझे कभी भी ट्रैक एण्ड फील्ड खेलों में कोई खास दिलचस्पी नहीं रही थी। मेरे डैड, वेलेज़ली, क्रिकेट के दीवाने थे और मेरे सभी दोस्त भी। स्वाभाविक ही था कि हम बस क्रिकेट की बातें करते थे। स्कूल में कोई भी 100 मीटर दौड़ या लाँग जम्प (लम्बी कूद) की बात नहीं करता था। हालाँकि मैंने ये ज़रूर देखा था कि ट्रेलॉनी में बड़ी उम्र के लोगों में इन खेलों का भी काफी जुनून था। लेकिन मुझे तो बस विकेट लेने में मज़ा आता था। तेज़ दौड़ना तो बस बल्लेबाज़ों को 'उड़ाने' के काम आता था, जिसमें मेरी लम्बाई और मेरी ताकत काम आती थी।

फिर मिस्टर न्यूजेंट ने थोड़ी चालाकी से काम लिया। उन्होंने मुझे खाने का लालच दिया।

"बोल्ट, अगर तुम स्कूल स्पोर्ट्स डे पर रिकार्डो को हरा दो तो मैं तुम्हें एक बॉक्स लंच दूँगा", उन्होंने कहा। इस बात को बखूबी जानते हुए कि किसी लड़के से कुछ करवाना हो तो सबसे अच्छा तरीका है उसे खाने का लालच देना।

वाह! बॉक्स लंच तो वाकई लुभावनी चीज़ थी। इसके भीतर स्वादिष्ट जर्क चिकन, भुने हुए शकरकन्द, चावल और मटर होता था। अब मेरे पास अच्छा दौड़ने के लिए एक प्रोत्साहन था, एक ईनाम। इस ईनाम और किसी बड़ी प्रतियोगिता में बेहतर प्रदर्शन करने के खयाल से मैं बहुत रोमांचित हो उठा। पहली बार ऐसा हुआ कि अगले दिन होने वाली सुपरस्टार मीट (दौड़) के लिए मैं इतना जोश से भर गया था। वाल्डेंसिया प्राइमरी स्कूल के दो सबसे बड़े सितारे एक-दूसरे से भिड़ने वाले थे और मुझे जीतने से कोई नहीं रोक सकता था।

"अच्छा, तो ठीक है मिस्टर न्यूजेंट", मैंने कहा। "ऐसा ही सही।"

वाल्डेंसिया में स्पोर्ट्स डे (खेल दिवस) एक बड़ी घटना होती थी। हमारा वाल्डेंसिया जमैका का एक आम ग्रामीण प्राइमरी स्कूल था। एक पहाड़ी के ऊपर उष्णकटिबन्धीय जंगलों के बीच खुली जगह में छोटी-छोटी एक

मंज़िला कमरों की कतार बना दी गई थी। इन्हीं में हमारा स्कूल लगता था। स्कूल के चारों ओर नारियल के पेड़ और जंगली झाड़ियाँ लगी हुई थीं। क्लासरूम की छतें नालीदार टिन की बनी थीं और दीवारें उजले गुलाबी, नीले और पीले रंगों से पुती थीं। वहाँ एक खेल का मैदान भी था जिसमें कुछ गोलपोस्ट बने थे, एक क्रिकेट पिच थी और एक दौड़ने का ट्रैक था जो घास से ढ़का और ऊबड़-खाबड़ था। इस ट्रैक की लेन (पंक्तियाँ) काली लाइनों के द्वारा बनाई गई थीं। ये काली लाइनें ज़मीन पर पैट्रोल जलाकर बनाई गई थीं। फिनिश लाइन पर एक झोपड़ी बनी हुई थी। जिस दिन दौड़ होने वाली थी ऐसा लग रहा था कि खिलाड़ियों के समर्थन में मानो पूरा स्कूल ही ट्रैक के किनारे इकट्ठा हो गया था।

मेरा दिल ज़ोर-से धड़क रहा था। और दिमाग में यही बात चल रही थी कि यह ओलम्पिक फाइनल जितनी बड़ी प्रतियोगिता है। पर जैसे ही मिस्टर न्यूजेंट ने चिल्लाया “गो”, तो कुछ अजीब-सी बात हुई। मैं तेज़ी-से उठा और चैम्पियनशिप में पहली बार मुकाबला करने के रोमांच से प्रेरित होकर ट्रैक पर बहुत तेज़ी-से दौड़ पड़ा। पहले तो मुझे सुनाई दे रहा था कि रिकार्डो मेरे पीछे आ रहा है। वह बहुत तेज़ी-तेज़ी से साँस ले रहा था, हालाँकि मुझे अपनी आँख के कोने से भी वह दिखाई नहीं दे रहा था और सड़कों पर हुई हमारी पहले की दौड़ों से मुझे समझ में आ गया था कि यह मेरे लिए एक अच्छा संकेत है। जैसे-जैसे दौड़ के मीटर तेज़ी-से गुज़रते गए मुझे उसकी आवाज़ सुनाई देनी भी बन्द हो गई। लम्बे-लम्बे डग भरते हुए मैं बहुत आगे निकल गया था और 100 मीटर तक तो सबकी आँखों से ओझल ही हो गया। रिकार्डो मेरे आसपास भी नहीं था। जब मैंने फिनिश लाइन पर लगे टेप को तोड़ा तब तो मैं उससे मीलों आगे था। दौड़ खत्म हो चुकी थी। मैंने अपनी पहली बड़ी दौड़ जीत ली थी।

बैंग! यह जीत तो मानो किसी धमाके, किसी बाढ़ की तरह थी। खुशी, आज़ादी, मज़ा – ये सब कुछ मुझे एक साथ महसूस हो रहा था। सबसे पहले फिनिश लाइन के पार होने का एहसास ज़बरदस्त था, खासतौर से स्कूल के स्पोर्ट्स डे की रेस जैसे बड़े मौके पर। इस प्रतियोगिता के बाद मैं आधिकारिक रूप से वाल्डेंसिया का सबसे तेज़ धावक बन चुका था। पहली बार ऐसा हुआ था कि, मुश्किल मुकाबले के अन्देशे ने मुझे मजबूर किया कि मैं ज़्यादा ज़ोर लगाऊँ। वर्ल्ड रिकार्ड और गोल्ड मैडलों की बात तो अभी बहुत दूर थी लेकिन रिकार्डो के खिलाफ रेस जीतने से मुझे ट्रैक एण्ड फील्ड के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा मिली। मैं विजेता बन चुका था, और रेस पूरी होने के बाद जब मैं ज़मीन पर गिरा तो एक चीज़ तो मुझे बहुत अच्छे से समझ में आ गई कि नम्बर एक होना कितना अच्छा लगता है।

भाग-2 पेज 18 पर...

उसैन के वॉलडेनसिया स्कूल में दौड़ने का ट्रैक

देसी कुत्ता

सुधेश उण्णीरामन

तुम्हें कुत्ते तो हर जगह मिल जाएँगे। स्कूल के लिए निकलते समय पड़ोसी के घर से भौंकेंगे। घर लौटते समय धूप से बचकर पेड़ की छाँव में सोए पड़े मिलेंगे। खेलते समय तुम्हारी गेंद के पीछे पड़ जाएँगे। बेवजह कार और बाइक का पीछा करेंगे। रात को लगातार भौंकेंगे, तुम्हें न पढ़ने देंगे और न ही सोने।

कभी सोचा है कि आखिर कुत्ते हमारे साथ रहने कैसे लगे? हमें इतना पता है कि आज के पालतू कुत्तों के पूर्वज भेड़िये थे। हमें यह पता नहीं कि भेड़िये मनुष्यों के साथ, उनकी बस्तियों में कैसे रहने लग गए। हो सकता है कि कुछ जंगली भेड़ियों ने मनुष्यों से दोस्ती कर ली और उनकी बस्तियों के आसपास आने-जाने लगे। शायद मनुष्यों के पास रहने पर भोजन आसानी से मिलने लगा हो। इस तरह भेड़ियों की एक टोली अपने जंगली रिश्तेदारों से अलग रहने लगी होगी। ऐसा पीढ़ी-दर-पीढ़ी होने पर ही तो इनके व्यवहार, आकार, बाल इत्यादि में इतने बदलाव होने की सम्भावना थी कि ये भेड़िये नहीं रहे। ये मनुष्य के पालतू कुत्ते बन गए। हमारे इशारों को इतनी बारीकी से पहचानने लगे कि ये हमारे प्रिय साथी बन गए। ये सब मध्य एशिया के मोंगोलिया और नेपाल के पास कुछ 40,000 साल पहले हुआ। हमारे पूर्वजों के साथ भारतीय उपमहाद्वीप में बसने पालतू कुत्ते भी आए। आज के भेड़िये और कुत्ते करीबी रिश्तेदार हैं लेकिन एक जंगली रह गया और एक का जीवन मनुष्यों के साथ जुड़ गया है।

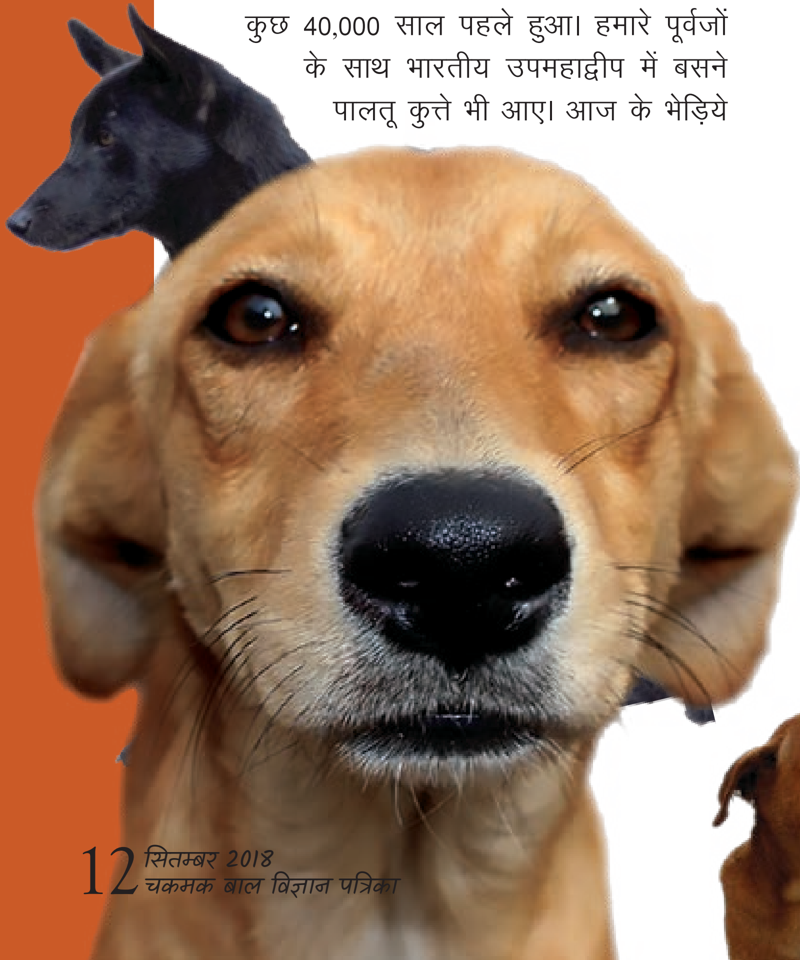

आज ज़्यादातर कुत्ते मनुष्यों के आसपास या उनके साथ ही रहते हैं – शहर-गाँव, गली-खेत में। जगह की अपेक्षा इनका ज़्यादा लगाव लोगों से है। ये अपने मनुष्य परिवारों के साथ एक से दूसरी जगह सफर करते हैं। मनुष्यों के साथ इनका इतना अटूट रिश्ता है कि तुम्हें जंगली कुत्ते बहुत ही कम मिलेंगे। हाँ, जंगलों में कुत्तों का एक रिश्तेदार मिल जाएगा – ढोल। कुत्ते, ढोल, सियार, भेड़िया, और लोमड़ी सब एक ही परिवार के हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप में पालतू कुत्तों के प्राचीन काल से रहने के कई प्रमाण हैं। इसके अलावा इनके पुरातात्विक प्रमाण भी हैं। भीमबेटका में चट्टानों पर बने हज़ारों साल पुराने चित्रों में मनुष्यों के बगल में खड़े कुत्ते मिलेंगे। हड़प्पा संस्कृति के शहरों में भी कुत्तों के रहने के प्रमाण मिले हैं। तुम्हें पता ही होगा कि हड़प्पा की ये बस्तियाँ 5000 साल पुरानी हैं। कुत्तों की भूमिका घर-सम्पत्ति, परिवार, मवेशी, खेतों की सुरक्षा के साथ-साथ शिकार में मदद की भी थी। कुछ समय पहले तक कई जनजातीय समुदाय कुत्तों को शिकार पर साथ ले जाते थे। शिकार के साथ आज यह प्रथा भी खत्म होती जा रही है। वेद, महाभारत, जातक, पंचतंत्र आदि प्राचीन कथाओं में इनका ज़िक्र तो है ही।

बताओ तुम्हें कितनी कहानियाँ याद हैं जिनमें कोई कुत्ता भी है?

इस कुत्ते को, जो भारतीय इलाके का वासी है, क्या कहते हैं? उत्तर भारत में इसे देसी कुत्ता कहते हैं, हिमाचल में लुरु, केरल में नाडन् पट्टी, तमिल नाडू में तेरु नाई या नाट्टु नाई, बंगाली में नेर कुकुर, असामिया में भोटुआ कुकुर...।

देसी कुत्ता उन भारतीय किस्मों से अलग है जिन्हें हमारे कुछ घुमन्तु समुदायों और शाही परिवारों ने अपने कुछ खास कामों के लिए तैयार किया है। उदाहरण के लिए भाकरवाल (हिमालयन मैस्टिफ) पहाड़ी कुत्तों की एक खास किस्म है। इसे घुमन्तु समुदायों ने अपनी भेड़ों को तेन्दुए और भेड़ियों से बचाने के

देसी कुत्ता

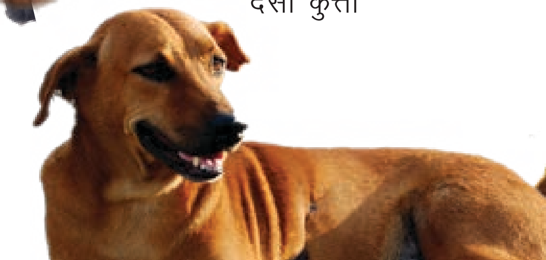

ढोल

लिए तैयार किया। राजपालयम और रामपुर के हाउण्ड ऐसी किस्में हैं जिन्हें शिकार के लिए पाला गया है। लेकिन देसी कुत्ते को किसी खास काम के लिए नहीं पाला जाता है, ये परिवार या समुदाय के साथी होते हैं।

देसी कुत्ते को तुम पहचानोगे कैसे? ये घरों में तो शायद ही मिलेंगे और सड़क-गली पर मिलने वाले सारे कुत्ते देसी नहीं होते। लेकिन हो सकता है कि तुम्हारे घर या स्कूल के पास कुछ देसी कुत्ते मिल जाएँ। आमतौर पर देसी कुत्ते मध्यम आकार, छोटे और कम बालों वाले होते हैं। ये ज़्यादातर हिरण के बच्चे जैसे हल्के भूरे या पीले रंग के होते हैं। कुछ देसी कुत्ते काले रंग पर सफेद धब्बों वाले होते हैं। पूरी तरह से काले देसी कुत्ते दुर्लभ हैं। इनका मुँह काला हो सकता है जबकि इनके पैर और पूँछ के सिरे सफेद होते हैं।

देसी कुत्तों का थूथन पतला होता है। उनकी बादाम के आकार की आँखें गहरे भूरे रंग की होती हैं। उनके नुकीले कान सिर के बिलकुल ऊपर न होकर थोड़ा नीचे और उठे हुए रहते हैं। उत्तेजित होने पर पूँछ मोड़कर उसे सीधा खड़ा रखते हैं। गर्दन पतली और छाती सीधी होती है। देसी कुत्ते जब चलते या दौड़ते हैं तो वे लम्बे-लम्बे डग नहीं भरते हैं, छोटे-छोटे कदम लेते हैं।

क्या तुम अपने घर के आसपास या अपने मोहल्ले में देसी कुत्ते को पहचान सकोगे? कोशिश करके देखो।

क्या तुमने सोचा है कि हम देसी कुत्तों को सिर्फ सड़कों पर क्यों देखते हैं, अपने घरों में क्यों नहीं? यह इसलिए है कि पिछली दो शताब्दियों में विदेशी किस्मों की तुलना में इनका महत्व कम हो गया है। विदेशी किस्म के कुत्तों को यूरोपी लोग लाए थे। हम पर राज करने वाले अँग्रेज़ अपने लैब्रडॉर, बीगल, जर्मन शेपर्ड और गोल्डन रिट्रीवर साथ लाए। समय के साथ शहरों में रहने वाले भारतीय भी इनको अपने घरों में पालने लगे। शहरी घरों में आज तुम्हें यही कुत्ते मिलेंगे।

विदेशी किस्म के कितने कुत्ते तुम्हारे मोहल्ले में रहते हैं?

भारत में रहने वाले विदेशी किस्म के कुत्ते कुछ दिक्कतों का सामना करते हैं। ये ठण्डे देशों से आए हैं और उसी मौसम के आदी हैं। इनकी खाल मोटी होती है जो भारत की तेज़ गर्मी और गर्मियों के लम्बे महीनों के लिए मुनासिब नहीं है। इनकी खाल और बालों का खास ध्यान रखना पड़ता है। चिचड़ी और पिस्सू इनकी तरफ ज़्यादा आकर्षित होते हैं। गर्मी और संक्रमणों के कारण ये अकसर बीमार पड़ते रहते हैं।

इनकी तुलना में देसी कुत्ते को उष्णकटिबन्ध के इलाकों में रहने की आदत है। इसकी रूखी खाल की देखभाल आसान है। इसकी चमड़ी की देख-रेख के लिए बहुत मेहनत करने की ज़रूरत नहीं है, साथ में देसी कुत्ते तुलनात्मक रूप से साफ-सुथरे हैं। इनमें खाल के संक्रमण कम होते हैं और बदन की वो बदबू जो विदेशी कुत्तों में होती है इनमें नहीं होती है।

अगर तुम्हें कुत्ते पसन्द हैं और तुम कोई कुत्ता घर लाना चाहते हो तो देसी कुत्ते के बारे में ज़रूर सोचना। ये अच्छे रखवाले होते हैं। इनकी मालिकों से तो दोस्ती होती है लेकिन अनजान लोगों से ये धीरे-धीरे ही दोस्ती करते हैं। थोड़ा-सा भी शक हो जाए तो भौंकने लगते हैं और चेतावनी देते हुए भौंकते रहते हैं।

देसी कुत्ते फुर्तीले होते हैं, खासकर सुबह और शाम के समय, और उन रातों को भी जब मौसम सुहाना होता है। ये दिनभर कहीं अन्दर या छाँव में पड़े रहते हैं। जब मौसम ठण्डा हो जाता है, उसके मुताबिक ये अपनी हलचल का समय बदल लेते हैं। तरह-तरह का भोजन खाते हैं, कम खाते हैं और ज़रूरत से ज़्यादा तो कभी-कभार ही। सही आहार दें तो 15 साल की उम्र तक जीते हैं।

तो किस बात का इन्तज़ार है? परिवार में बात करो और देसी कुत्ते का एक पिल्ला घर ले आओ!

अनुवाद: विनता विश्वनाथन

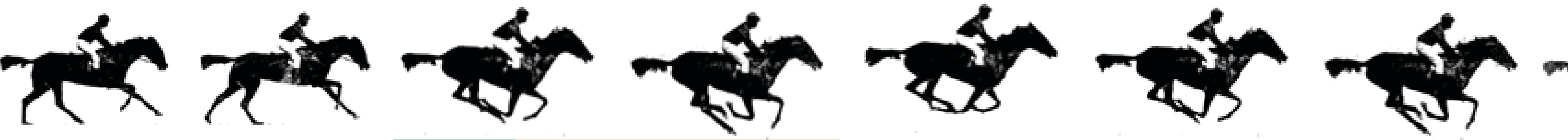

तुम भी बनाओ

ज़ोट्रोप

कभी एक छोटी-सी फिल्म बनाने का मन हुआ हो तो आज उस इच्छा को पूरा करने का मौका है। और वो भी कैमरे के इस्तेमाल के बिना। मज़ाक नहीं, सच्ची। तो चलो, एक ज़ोट्रोप बनाकर एनिमेशन तैयार करते हैं।

सामग्री- A4 (फोटोकॉपी पेपर के आकार का) गत्ता, A3 (दो A4 को अगल-बगल में रखने पर जो आकार बनता है वैसा) काली और सफेद रंग की चार्ट शीट, पेंसिल, पेपर कटर या कैंची, टेप, फेविकॉल या गोंद, स्केल, 25-30 सेंटीमीटर लम्बी सीधी व पतली लकड़ी, कहानी के चित्रों का एक पट्टा।

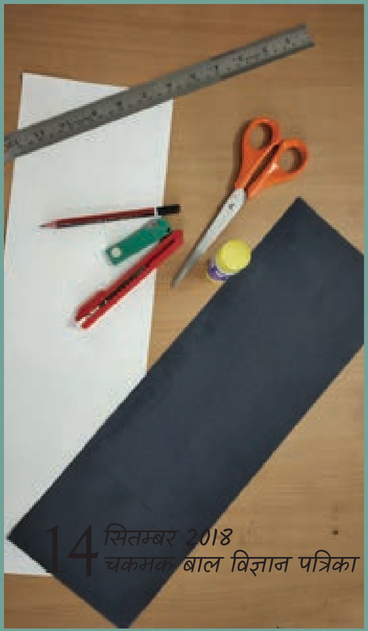

1. गत्ता लेकर उसमें गोल आकार काटो। ध्यान रहे यह गोल आकार ज़्यादा बड़ा न हो। सी.डी. के आकार का यानी कि 10-12 सेंटीमीटर बड़ा हो सकता है। इस गोल आकार के गत्ते के बीचों-बीच एक छोटा-सा छेद कर दो जिसमें पतली लकड़ी फँस जाए।

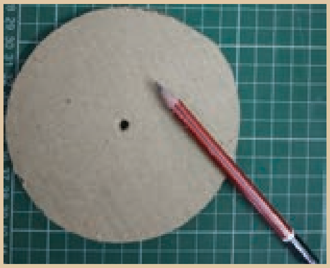

2. काले और सफेद रंग की A3 साइज़ शीट लेकर इन्हें आधे में काट लो। चौड़ाई में काटो ताकि दो लम्बी पट्टियाँ बन जाएँ। काली शीट को सफेद शीट से लगभग 2-3 इंच छोटी काटना। सफेद शीट के बीच में काली शीट को चिपका दो। दोनों तरफ से सफेद शीट का बराबर भाग निकला होना चाहिए ।

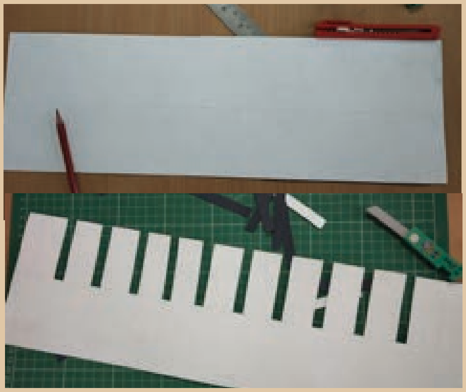

3. अब सफेद शीट पर पेंसिल से निशान लगाकर उसे दो बराबर भागों में बाँट दो।ऊपर वाले भाग में बराबर की दूरी पर 1 सेंटीमीटर चौड़ा पट्टा पेंसिल से बनाओ। ऐसे कम से कम दस पट्टे चिन्हित करना। फिर इन पट्टों को काट लेना।

4. नीचे वाले भाग पर चित्रों की पट्टी चिपकानी है। इनसे एनिमेशन बनेगा। तो एक ही एक्शन के अलग-अलग, क्रमानुसार फ्रेम या चित्र होने चाहिए। जैसे कि 8-10 मुद्राओं में भागता हुआ घोड़ा या रस्सी कूदता हुआ बच्चा इत्यादि। पहला और आखिरी चित्र समान हो तो बेहतर होगा। हर चित्र कम से कम इतना बड़ा होना चाहिए कि दो कटे हुए पट्टों के बीच में आ जाए। दो चित्रों के बीच 2-3 सेंटीमीटर की दूरी होनी चाहिए। अब चित्रों की पट्टी को चिपका दो।

5. अब सफेद शीट के अन्त में बचे हुए छोरों को आपस में चिपका लो और गोलाकार गत्ते पर उसे टेप की मदद से चिपका दो|

6. गत्ते के 2-3 छोटे टुकड़े काट लो| 2 टुकड़े लकड़ी के एक छोर पे लगाकर लकड़ी को गत्ते पर बनाए छेद के नीचे से अन्दर घुसा दो|

अब लकड़ी को नीचे से घुमाकर देखो| क्या हुआ?

अब तुम चाहो तो खुद से कोई कहानी पर एक स्ट्रिप बनाकर इसमें लगा सकते हो और दोस्तों को छोटी-सी मूवी दिखा सकते हो|

रायबहादुर

चन्दन यादव
चित्र: हबीब अली

रायबहादुर के बारे में मैंने अपने पिता से सुना था। उसका रंग चमचमाता काला था। उस पर किसी और रंग का एक भी छापा नहीं था। स्वस्थ शरीर। शान्त। खाना खाते समय भी वह किसी तरह की जल्दबाजी नहीं करता था। रायबहादुर हमारा देसी कुत्ता था। आज से कोई दो पीढ़ी पहले दादाजी के समय में।

रायबहादुर एक पदवी थी, जो अँग्रेज़ उनके साम्राज्य के सेवकों को दिया करते थे। मुस्लिमों को मिलती तो खानबहादुर और सिक्खों को मिलती तो यह सरदार बहादुर हो जाती थी। हिन्दू का कुत्ता भी हिन्दू हुआ। शायद सोच-समझकर हमारे परिवार के लोगों ने कुत्ते का नाम रायबहादुर रखा हो। 1940 के आसपास के प्रसिध्द डाकू सुल्ताना ने भी अपने कुत्ते का नाम रायबहादुर रखा था।

बहरहाल उसका नाम रायबहादुर था, तो था। हम इस इतिहास को अब बदलने से तो रहे।

अभी भारत के आज़ाद होने में तीन-चार साल बाकी थे। वो सचमुच के राय और खान बहादुरों का ज़माना था। उस समय अगर सरकार को पता चल जाता कि हमने अपने कुत्ते का नाम रायबहादुर रखा है तो पता नहीं क्या होता? हो सकता था रायबहादुर को ज़हर खिलाकर मार डालते! यह भी हो सकता था कि कुत्ते का नाम रायबहादुर रखने के अपराध में दादा को जेल में डाल देते।

रायबहादुर को जंजीर से बाँधकर नहीं रखा जाता था। उसकी दोपहर अकसर घर के पिछवाड़े नीम, पीपल के तले ऊँघते हुए बीतती थी। सुबह के समय वो मोहल्ले के अन्य कुत्तों के साथ मस्ती और उछल-कूद करता रहता था। अब ये याद नहीं है कि दादा-दादी को रायबहादुर की इस दोस्ती से कोई एतराज़ होता रहा होगा कि नहीं।

मोहल्ले में एक बामन परिवार था। उस समय परिवारों को जाति के नाम से ही जानने का चलन था। उस परिवार का मुखिया सरकारी नौकरी करता था। मोहल्ले के बाकी लोग किसानी, मज़दूरी आदि करते थे। इसलिए बामन परिवार का मोहल्ले में एक अलग रुतबा था। वे ना किसी से बात करते थे, ना उनका किसी के घर आना-जाना था। वे लोग मोहल्ले के बच्चों को अपने घर के आसपास फटकने तक नहीं देते थे। रायबहादुर तो कुत्ता था, उसे कैसे सहन करते। जब भी रायबहादुर उनके घर के सामने लगे नीम के पेड़ के नीचे बैठता, वे उसे पत्थर मारकर भगा देते थे।

ये सिलसिला बहुत समय तक चलता रहा होगा। ऐसे ही किसी एक दिन रायबहादुर नीम के नीचे बैठा था। उसे देखकर बामन परिवार का एक तेरह-चौदह साल का लड़का उसे भगाने के लिए लकड़ी लेकर मारने लपका। रायबहादुर को गुस्सा आ गया। उसने लड़के का पाँव काट खाया।

उस दिन बहुत बवाल हुआ। हम लोगों और रायबहादुर को बहुत गालियाँ सुननी पड़ीं। पिताजी की बताई एक बात मुझे अब भी याद है - सा... (जाति सूचक गाली), समझते क्या हो। मैं बीस साल से एसडीओ (तहसील का सबसे बड़ा अधिकारी) का बाबू हूँ। सब को थाने में बन्द करवा दूँगा।

इस घटना के कारण हमारे परिवार को एक दुखद फैसला लेना पड़ा। हमें लगा कि कुत्ते का नाम ‘रायबहादुर’ होने का मामला तूल पकड़ सकता था। रायबहादुर को मार तो सकते नहीं थे। दादा ने फैसला किया कि इसे कहीं दूर छोड़ आते हैं। दादा के एक किसान दोस्त रायसिंह जाट बहुत दिन से कह रहे थे कि रायबहादुर उनको दे दें। उस दिन रायबहादुर रायसिंह को दे दिया गया।

मगर चौथे ही दिन 12 किलोमीटर का पैदल सफर करके रायबहादुर घर लौट आया।

उस दिन एक बार फिर सबको वही धमकी सुननी पड़ी – मैं बीस साल से एसडीओ का बाबू हूँ...।

इस बार दादा रायबहादुर को बस में बैठाकर 20 किलोमीटर दूर नर्मदा नदी के पार छोड़ आए। घर में मातम छा गया। मन ये सोचकर ग्लानि से भर गया कि एक बेज़ुबान के साथ अन्याय किया गया है। कई दिनों तक ऐसा महसूस होता था कि परिवार का ही कोई नहीं रहा।

दो महीने बाद अचानक एक दिन रायबहादुर लौट आया। उसका रंग कुछ फीका पड़ गया था। वो पहले की तुलना में दुबला भी हो गया था।

रायबहादुर द्वारा बच्चे को काटने का मामला अब शान्त पड़ चुका था। कुछ ही दिनों में रायबहादुर अपने पहले के रूप-रंग में लौट आया।

रायबहादुर के घर लौटने के दो साल बाद एक और घटना घटी।

उस समय हमारे कस्बे में भी लोग देश की आज़ादी के लिए प्रदर्शन करते रहते थे। एक दिन इसी तरह का कोई प्रदर्शन था। सब लोग ज़ोर-ज़ोर से नारे लगा रहे थे। तभी पुलिस आ गई। गिरफ्तारी से बचने के लिए प्रदर्शनकारी भागने लगे। आगे प्रदर्शनकारी, पीछे पुलिस। प्रदर्शनकारियों को भागते देख रास्ते में चल रहे दो-चार लोग भी भागने लगे। एक सज्जन बाज़ार से आलू खरीदकर घर जा रहे थे। वे भी भागे। दौड़ते हुए लोग जब हमारी गली से गुज़रे तो रायबहादुर भी भौंकता हुआ उनके पीछे लपका। उसने आलू खरीदकर लौट रहे सज्जन का झोला मुँह से पकड़कर फाड़ दिया। सारे आलू सड़क पर बिखर गए। इस हड़बड़ी में आलू वाले सज्जन भी गिर पड़े। प्रदर्शनकारी तो भाग गए, पर पुलिस ने इनको पकड़ लिया, और जेल में डाल दिया। वे छह महीने बाद तभी जेल से बाहर आ पाए, जब देश आज़ाद हुआ।

पहले गणतंत्र दिवस के दो साल पहले ही बूढ़ा रायबहादुर गुज़र गया। आलू वाले सज्जन इलाके के जाने-माने नेता और स्वतंत्रता सेनानी के रूप में मशहूर हो चुके थे। किसी ना किसी प्रसंग में उनका नाम आता ही रहता था। जब भी उनका ज़िक्र होता, हमें अपना रायबहादुर याद आता।

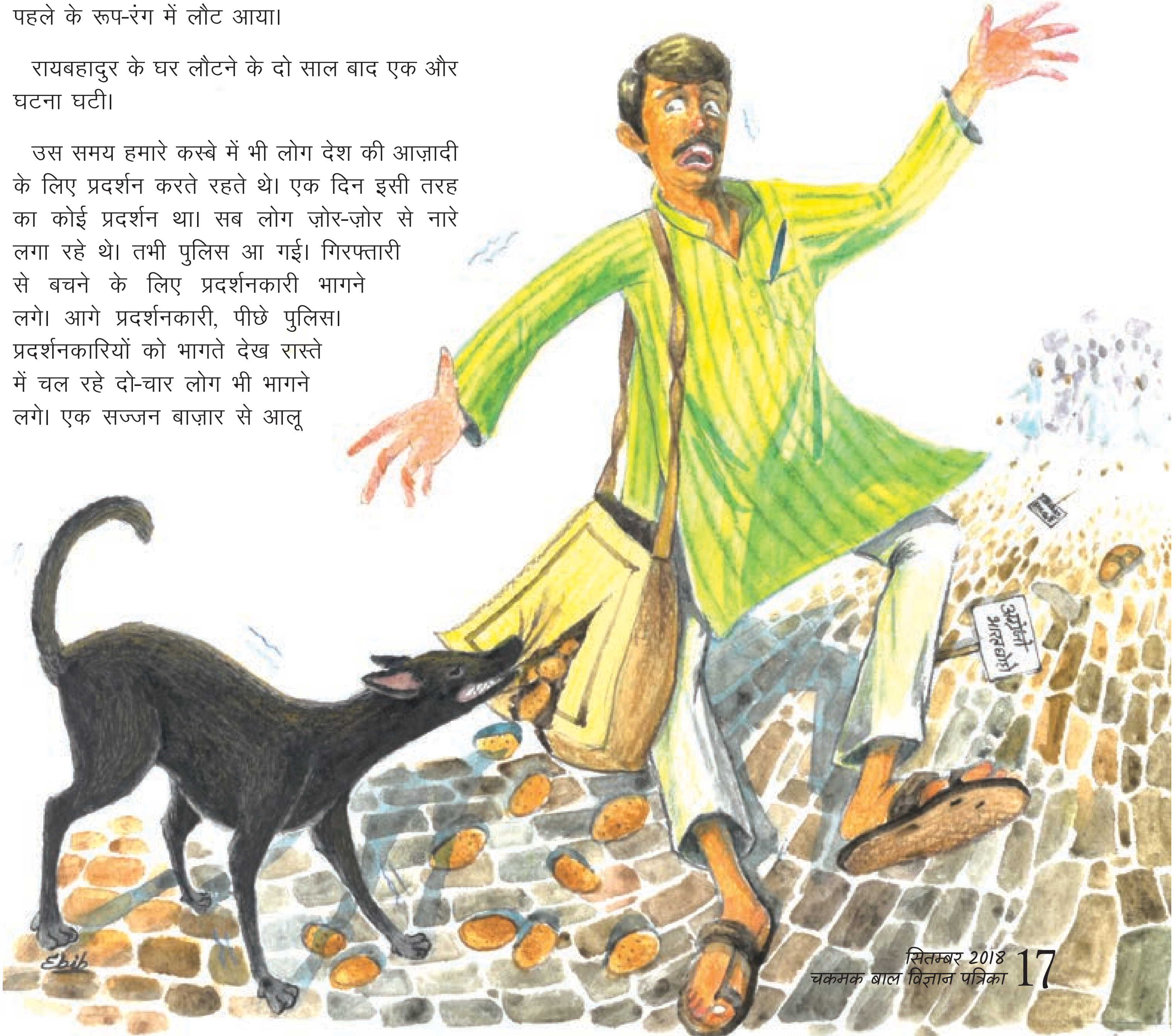

मॉम, डैड और कॉक्सहीथ में हमारी ज़िन्दगी

उसैन बोल्ट

मेरा घर कॉक्सहीथ में था जो वाल्डेंसिया प्राइमरी स्कूल और शेरवुड कंटेंट नाम के कस्बे के पास स्थित एक छोटा-सा गाँव था। और कितना खूबसूरत गाँव था मेरा, हरे-भरे पेड़ों और जंगली झाड़ियों के बीच बसा हुआ। वहाँ बहुत ज़्यादा लोग नहीं रहते थे। हर सौ मीटर की दूरी पर एक-दो घर थे, और हमारा तो साधारण-सा, एक-मंज़िला घर था जो डैड ने किराए पर लिया था। वहाँ ज़िन्दगी की रफ्तार धीमी थी, बहुत धीमी। भूले-बिसरे ही कोई कार निकलती थी, और सड़क हमेशा ही खाली रहती थी। कॉक्सहीथ में ट्रैफिक जाम से मिलती-जुलती स्थिति तभी बनती थी जब कोई दोस्त सड़क पर आपकी तरफ हाथ हिलाता था!

ये कोई अचरज की बात नहीं है कि बचपन में मैंने जिस तरह का जीवन जिया, उसी का परिणाम है कि मैं एक ओलम्पिक लेजेण्ड बन सका। मेरे गाँव में जोखिम भरे कारनामे करने के लिए जगह ही जगह थी। बल्कि मेरे घर में भी।

जिस पल से मैंने चलना शुरू किया तभी से मैंने घर की चीज़ों की तोड़-फोड़ करना शुरू कर दी थी क्योंकि मैं एक पल के लिए शान्त नहीं बैठ सकता था। मेरी गति तो पैदा होते से ही तेज़ थी! मैं पूरे समय इधर से उधर होता रहता था। जब मैं घुटनों के बल चलना सीख गया था तो बस हर चीज़ की पड़ताल करना चाहता था। कोई सोफा मुझसे बचता नहीं था, कोई अलमारी मेरी पहुँच से बाहर नहीं थी और घर के सबसे अच्छे फर्नीचर मेरे लिए ऊपर चढ़कर खेलने वाली जगह बन गए थे। मैं एक जगह स्थिर नहीं बैठता था, एक जगह रुककर खड़ा नहीं हो सकता था। हमेशा कुछ न कुछ करता रहता था, तमाम चीज़ों पर चढ़ता रहता था, और मेरे भीतर इतनी ज़्यादा ऊर्जा और जोश था कि मेरे मॉम-डैड मुझे सम्भाल नहीं पाते थे। और, जब कोई सौवीं बार मैंने अपना सिर दरवाज़े पर दे मारा या उससे टकरा गया, तो मेरे मॉम--डैड यह पता लगाने के लिए मुझे डॉक्टर के पास ले गए कि मेरे भीतर क्या गड़बड़ी थी।

“ये लड़का स्थिर ही नहीं रहता”, मेरे डैड मुझे कोसते

कॉक्सहीथ में अपने घर के बाहर उसैन की मॉम जैनिफर

हुए कहते। "इसके भीतर कुछ ज़्यादा ही ऊर्जा है! हो न हो कुछ गड़बड़ है।"

डॉक्टरों ने मेरे मॉम-डैड को बताया कि मेरी स्थिति को हाइपरएक्टिविटी (अतिक्रियाशीलता) कहते हैं, और इसका कुछ किया नहीं जा सकता। उनका कहना था कि उम्र के साथ इस स्थिति में सुधार हो जाएगा। लेकिन उस वक्त ज़रूर मेरी हरकतें मेरे मॉम-डैड के लिए न सिर्फ बहुत मुश्किलें पैदा करती रही होंगी बल्कि उन्हें थका भी देती होंगी। और किसी को समझ नहीं आता था कि मुझमें इतनी शक्ति आई कहाँ से थी। न तो मेरी मॉम अपनी युवावस्था में एथलीट थीं, और न ही मेरे डैड। हाँ वे लोग अपने स्कूल में दौड़ते ज़रूर थे लेकिन उस स्तर पर नहीं जहाँ मैं बाद में पहुँचने वाला था। और मैंने सिर्फ एक बार उनमें से किसी को तेज़ दौड़ते हुए देखा था। मॉम को। एक बार मॉम ने सड़क पर एक मुर्गे का पीछा करते हुए उसे पकड़ा था क्योंकि वह हमारे किचन से एक मछली दबाकर भाग रहा था। वह मछली हमारे डिनर के लिए पकाई जानी थी। वाह! मॉम को ऐसे भागता देखकर मुझे लगा था मानो 200 और 400 मीटर के ओलम्पिक गोल्ड मैडलिस्ट अमरीकी एथलीट माइकल जॉनसन भाग रहे हों। मॉम ने तब तक उस मुर्गे का पीछा किया जब तक उसने मछली छोड़ नहीं दी। अपने पंखों को बचाने के लिए वह मछली छोड़ जंगल में भाग गया। मैं हमेशा मज़ाक करता था कि अपनी कद-काठी तो मुझे डैड से मिली है (वे छः फुट से ज़्यादा लम्बे हैं और बिलकुल मेरी तरह दुबले-पतले हैं), लेकिन जिस प्रतिभा की मुझे ज़रूरत थी वह मॉम से मिली है!

ट्रेलॉनी में ज़िन्दगी की जो रफ्तार थी वह मेरे मॉम-डैड के अनुकूल थी। वे दोनों गाँव के लोग थे और उन्हें किंग्स्टन जैसी व्यस्त ज़िन्दगी जीने की कोई ज़रूरत नहीं थी। लेकिन वे लोग बहुत मेहनती थे और एक पल के लिए भी आराम से नहीं बैठते थे। डैड एक स्थानीय कॉफी कम्पनी में मैनेजर थे। विण्डसर क्षेत्र में बहुत मात्रा में कॉफी पैदा होते थे, और यह जगह कॉक्सहीथ से कई मील दक्षिण में थी, और उनका काम था यह देखना कि ये कॉफी बीन्स जमैका के बड़े कारखानों में पहुँच जाएँ। वे हमेशा सुबह जल्दी उठ जाते थे और एक गाँव से दूसरे गाँव होते हुए देशभर में घूमते रहते थे। ज़्यादातर वे रात को देर से घर लौटते थे। जब मैं छोटा था, तो कभी-कभी

ऐसा भी होता था कि अगर मैं शाम को छह-सात बजे से पहले सो गया तो उन्हें कई-कई दिनों तक देख ही नहीं पाता था क्योंकि वे तो बस काम, काम, काम में ही लगे रहते थे। वे रात में जब भी घर लौटते थे, मैं उस समय गहरी नींद में होता था।

काम करने में मेरी मॉम भी बिलकुल पीछे नहीं थीं। वे ड्रैस बनाने का काम करती थीं और हमारा घर हमेशा ड्रैस के कपड़ों, पिनों और धागों से भरा रहता था। गाँव के सब लोग हमारे यहाँ आते थे, जब भी उन्हें अपने कपड़े ठीक कराने होते थे। मॉम अगर मुझे खाना नहीं खिला रही होती थीं, मुझे परदों पर से नीचे नहीं उतार रही होती थीं तो बाकी समय वे हमेशा कपड़े सिलती रहती थीं, सुई में धागा डालती रहती थीं या फिर बटन टाँकती रहती थीं। फिर मैं जब थोड़ा बड़ा हो गया तो मॉम मुझसे मदद लेने लगीं। जल्दी ही मैंने कपड़ों में गोट लगाना, उनको सिलना और पिन लगाकर जोड़ना सीख लिया। तो मुझे मालूम है कि अगर कभी मेरी शर्ट फट जाए तो मुझे क्या करना है। हालाँकि मैं तो अभी भी मॉम से ही अपनी शर्ट ठीक करने को कहूँगा क्योंकि मॉम ने हमेशा ही चीजों को सुधारने का काम किया है। अगर उन्हें पता होता था कि कोई उपकरण कैसे काम करता है, जैसे इस्त्री, तो उसमें टूट-फूट हो जाने पर वे आमतौर पर उसे आसानी से ठीक कर लेती थीं। मुझे लगता है कि बचपन में मेरे इतने बेफ़िक्र रह पाने का एक कारण ये भी था क्योंकि अगर मैं घर में कोई भी सामान तोड़-फोड़ देता तो मॉम उसे ठीक करने के लिए हमेशा तैयार रहती थीं।

भाग 3 - पेज 24 पर...

पंचबटी

योगेश स्नेही

हाल ही में मुझे पंचबटी नाम की एक जगह पर हफ्ता भर बिताने का मौका मिला। यह जगह देहरादून में है। पंचबटी दरअसल संस्कृत शब्द पंचवटी का ही रूप है। इसका सरल-सा अर्थ है पाँच पेड़ों का कुंज। आमतौर पर पाँच पेड़ - बड़, बेल, आमला, अशोक और पीपल मिलकर पंचवटी बनाते हैं। इन पेड़ों को तुमने ज़रूर अपने आसपास देखा होगा।

पंचवटी को हम सब रामायण से जोड़ते हैं, जहाँ पर सीता हरण हुआ था। भारत में बहुत-सी जगहों का दावा है कि वही रामायण वाली पंचवटी है। वाल्मीकि रामायण में पंचवटी का वर्णन बेहद खूबसूरत है। यह भी कहा जा सकता है कि यह हमारे साहित्य में किसी जगह की जैविक पारिस्थितिकी (पेड़-पौधे, जानवर-पक्षी आदि) का पहला विवरण है। वाल्मीकि बताते हैं कि गोदावरी तट पर स्थित इस पंचवटी के घने जंगल में सुनहरे और लाल फूलों वाले पेड़ थे और रसीले फलों के पेड़ और बेरियाँ थीं, सुगन्धित पौधे थे। कितने तरह के पेड़ों का वर्णन मिलता है! बड़ और अशोक के अलावा पलाश, चन्दन, साल, महुआ, खदीर, ताड़, छीन्दा, आम..... सूची लम्बी है। इनके बीच से गोदावरी नदी मुक्त होकर रंग-बिरंगी चट्टानों से खेलती हुई बहती है। पंचवटी के पक्षियों में मोर, गाने वाले बत्तख, चक्रवाक हंस, आदि का उल्लेख है। और फिर शर्मीले हिरण और कृष्ण मृग बेझिझक विचरण करते और कुश घासों पर चरते थे। इन्हीं में से एक सुनहरे हिरण पर सीता की नज़र पड़ती है और आगे की कहानी मुझे बताने की ज़रूरत नहीं है।

पंचवटियों के बारे में एक मान्यता यह भी है कि ये अध्ययन और ध्यान की जगहें हैं। यहाँ लोग समाज की चहल-पहल से दूर होकर दुनिया और जीवन के गूढ़ अर्थों पर विचार करते थे। देहरादून की पंचबटी के पीछे इसी तरह की सोच है – एक जगह, जहाँ विद्वान रोज़मर्रा के काम से दूर विचार-विमर्श के लिए जुटें। इसकी कल्पना पंजाब के प्रसिद्ध भाई वीर सिंह (जीवनकाल 1872 से 1957) और उनके वैज्ञानिक भाई डॉक्टर बलबीर सिंह (1896 से 1974) ने की थी। यह जगह मूलतः डॉक्टर बलबीर सिंह का निवास था और उसे उनके मरने के बाद, उनके नायाब पुस्तकालय के साथ पंजाब विश्वविद्यालय को दान में दे दिया गया था।

इस पंचबटी में पचास साल पुराने आम, लीची, कटहल, अशोक, अंजीर, चीकू आदि के पेड़ हैं और साथ ही विविध तरह के फूलों के पौधे। गर्मी के अन्त में जब इन पेड़ों के फल पकने लगते हैं, इन्हें खाने के लिए ढेरों चमगादड़ आ पहुँचते हैं। यहाँ पुस्तकालय के अलावा एक छोटी-सी कला वीथी भी है जिसमें चुगतई, ठाकुर सिंह, सोभा सिंह, मेहर सिंह और द्विजेन बेन जैसे विख्यात कलाकारों के बनाए चित्र देखे जा सकते हैं।

बाहर पेड़ों के बीच कई शिल्प हैं जो पंचबटी को एक अलग आयाम देते हैं और भारत की विविध बौद्धिक परम्पराओं से जोड़ते हैं। एक झुरमुट के बीच में सीता की एक मूर्ति है जैसे कि वह अपनी कुटिया के दरवाज़े पर खड़ी सुनहरे हिरण को आकर्षित होकर देख रही हों। यह शिल्प, पौराणिक कथा और इस पंचबटि को जोड़ता हुआ लगता है। सीता की मूर्ति से लगी हुई एक सीढ़ी है जिससे हम एक टीले के ऊपर पहुँचते हैं। वहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक मूर्ति है। टैगोर सामने देखने की बजाय गहन चिन्तन की मुद्रा में झुरमुट की ओर, या दूर सूरज की ओर या शायद पुस्तकालय की ओर देख रहे हैं। इस परिसर के प्रवेशद्वार के पास ही गांधार शैली की एक आदमकद बुद्ध प्रतिमा है। वे भी ध्यान मुद्रा में खड़े हैं।

पुस्तकालय के समीप तीन छोटे कुण्ड हैं जिनमें कुमुदनियाँ खिलती हैं। उनके पास एक छोटा पथरीला पहाड़ है।

पहाड़ी पर मगरमच्छ पर सवार जल के देवता वरुण और नाग देवताओं की मूर्तियाँ हैं। इस तरह विविध आकृतियाँ जो अतीत और वर्तमान के मिथक, इतिहास, धर्म, दर्शन आदि की प्रतीक हैं, प्रकृति, पौराणिक गाथा और इतिहास के बीच संवाद करती हुई-सी प्रतीत होती हैं।

जुलाई के अन्त में, बारिश आने से पहले सारे फल तोड़ लिए जाते हैं। रात भर ठेकेदार के चौकीदार चमगादड़ों को भगाते रहते हैं। जैसे ही बारिश आएगी, हॉर्नबिल और कोयल की आवाज़ें गायब हो जाएँगी। शायद कुछ अन्य पक्षी उनकी जगह ले लेंगे। रात में उल्लुओं और कीटों की आवाज़ें आने लगती हैं। चांदनी रातों में पंचबटी के घने पेड़ों के बीच से चाँद ताकता रहता है। चाँद का ये ताकना और चिड़ियों का चहचहाना, इस पंचबटी को भारत की लम्बी सोच-विचार और बौद्धिक परम्परा के साथ जोड़ता हुआ लगता है। जहाँ अतीत वर्तमान के साथ गुँथ जाता है। बरसातों में विविध फर्न और लताएँ पेड़ों के तनों पर छा जाती हैं जिससे पंचबटी के जीवन में नए आयाम जुड़ जाते हैं।

चित्रः पंचवटी में कुटिया बनाते राम, सीता और लक्ष्मण। इसे मेवाड़ के राजा के लिए चित्रकार साहिब दीन ने 1649 से 1653 के बीच बनाया था।

गणित है मज़ेदार!

पैटर्न 2

संख्याओं से खेलने लगो तो वे भी बहुत से करतब दिखाती हैं, हमारा मन बहलाती हैं। गणित का डर भगाने के लिए इससे अच्छा क्या तरीका हो सकता है! पिछले अंक में हमने कुछ पैटर्न देखे। इस अंक में भी यह खेल जारी रखेंगे। यह वैसे ही है जैसे हम रंगोली के नए-नए पैटर्न सीखकर बनाते रहते हैं और खुद से गढ़ते भी रहते हैं।

लगातार आने वाली कोई भी तीन संख्याएँ लो जैसे कि 2, 3, 4 या फिर 8, 9, 10।
अब देखो ये तीन संख्याएँ क्या-क्या करतब दिखाती हैं –

$$
\begin{aligned}
2+3+4 &= 9 \\
&= 3\times3 \\
&= (2\times3)+3 \\
&= (4\times2)+1 \\
&= (4\times3)-3
\end{aligned}
$$

और

$$
\begin{aligned}
8+9+10 &= 27 \\
&= 9\times3 \\
&= (8\times3)+3 \\
&= (10\times2)+7 \\
&= (10\times3)-3
\end{aligned}
$$

दूसरी तरह से कहूँ तो तीन लगातार संख्याओं के बीच की संख्या को तीन से गुणा करने पर जो संख्या मिलेगी वह तीनों संख्याओं के जोड़ के बराबर होगी।

अगर हम पहली संख्या को लें और उसे तीन से गुणा करके फिर तीन जोड़ें तो जो संख्या मिलेगी वह भी तीनों संख्याओं के जोड़ के बराबर होगी।

या फिर हम आखिरी संख्या को लें और फिर उसे दो से गुणा करें व पहली संख्या से एक कम करके जोड़ें तो भी जो संख्या मिलेगी वह तीन संख्याओं के जोड़ के बराबर होगी।

आखिरी संख्या को तीन से गुणा करें और उसमें से तीन घटाएँ तब भी..।

इसे तुम लगातार आने वाली किन्हीं भी तीन संख्याओं पर जाँच करके देख सकते हो। यह एक प्रकार का पैटर्न है।

अब हम कुछ और मज़ेदार पैटर्न देखेंगे।

$$1^2 = 1$$
$$11^2 = 121$$
$$111^2 = 12321$$
$$1111^2 = 1234321$$
$$11111^2 = 123454321$$
$$111111^2 = 12345654321$$
$$1111111^2 = 1234567654321$$
$$11111111^2 = 123456787654321$$
$$111111111^2 = 12345678987654321$$

है न मज़ेदार बात! अब जब कभी तुम्हारे पास फुरसत हो तो देखो, और किसी वर्ग या घन (क्यूब) की संख्या से शृँखला का इस तरह पैटर्न बनता है कि नहीं।

पिछले अंक में हमने 9 के पहाड़े के पैटर्न देखे थे। यहाँ उसी को आगे बढ़ाकर देखते हैं।

$$0 \times 9 + 1 = 1$$
$$1 \times 9 + 2 = 11$$
$$12 \times 9 + 3 = 111$$
$$123 \times 9 + 4 = 1111$$
$$1234 \times 9 + 5 = 11111$$
$$12345 \times 9 + 6 = 111111$$
$$123456 \times 9 + 7 = 1111111$$
$$1234567 \times 9 + 8 = 11111111$$
$$12345678 \times 9 + 9 = 111111111$$
$$123456789 \times 9 + 10 = 1111111111$$

तुम पता करो कि यह सिलसिला इस लाइन के भी आगे बढ़ाया जा सकता है या नहीं।

शैलेश शिराली के पुस्तक *अ प्राइमर ऑन नम्बर सीक्वेन्सस्* (2004, यूनिवरसिटीज़ प्रैस) पर आधारित।

दुनिया का सबसे तेज़ धावक - 3

मेरा बचपन मेरा जिम

उसैन बोल्ट

14 साल की उम्र में उसैन ने अपने पहले अंतर्राष्ट्रीय रेस में भाग लिया। 200 मीटर और 400 मीटर की दौड़ में रजत पदक जीता।

कॉक्सहीथ में मुझे कभी भूखा नहीं रहना पड़ा क्योंकि यह खेती करने वालों की बस्ती थी और इलाके में जो कुछ भी पैदा होता था, वो काफी अधिक होता था, हम उसी पर जीते थे। यहाँ रतालू, केले, कोका, नारियल, बेरी, गन्ने, जैली, आम, सन्तरे और अमरूद के पेड़ थे। ये सारी चीज़ें हमारे घर के पिछवाड़े में और उसके आसपास ही पैदा होती थीं। इसलिए मॉम को फल और सब्ज़ी लेने कभी सुपरमार्केट नहीं जाना पड़ता था। किसी न किसी फल या सब्ज़ी का मौसम हमेशा होता ही था, और मुझे जो चीज़ खाने का मन होता, खा लेता। केले पेड़ से लटकते रहते थे और मैं हाथ बढ़ाकर उन्हें तोड़ लिया करता था। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था कि मेरे पास पैसे नहीं होते थे, क्योंकि अगर मुझे भूख लगी होती तो मैं किसी न किसी पेड़ से फल तोड़कर खा लेता। तब मुझे इस बात का कतई एहसास नहीं था कि मैं ऐसी स्वास्थ्यवर्धक खुराक ले रहा था जिससे मेरे शरीर में ताकत और गुणवत्ता कूट-कूटकर भरती जा रही थी।

और फिर मेरी ट्रेनिंग शुरू हुई।

कॉक्सहीथ की झाड़ियों का जंगल प्राकृतिक खेल मैदान जैसा था। मुझे कोई शारीरिक गतिविधि करने के लिए अपने घर से निकलना भर होता था। खेलने के लिए हमेशा कुछ न कुछ होता था, दौड़ने के लिए हमेशा कोई जगह होती थी, और चढ़ने के लिए भी हमेशा कुछ होता था। इन जंगलों में अभ्यास के ऐसे मौके उपलब्ध थे जो स्प्रिन्टर बनने की इच्छा रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए बहुत उपयुक्त थे। वहाँ खेलने के लिए बीच-बीच में खुली जगह थी और नारियल के टूटे पेड़ बाधा-दौड़ की बाधाओं का काम करते थे। आजकल जिस तरह कुछ बच्चे पूरे दिन घर बैठकर कम्प्यूटर पर गेम्स खेलते रहते हैं, मेरा हिसाब-किताब तो उससे बिलकुल उलटा था। मुझे तो बाहर रहना अच्छा लगता था। नई-नई जगह खोजता रहता था और नंगे पैर जितना तेज़ बन सके भागता था।

हो सकता है बाहरी लोगों को ये जंगल भयंकर लगते हों लेकिन बच्चों के हिसाब से यह बहुत ही सुरक्ष स्थान था। वहाँ अपराध नहीं होते थे, और गन्ने के पेड़ों में कोई घात लगाकर नहीं बैठा रहता था। हाँ, वहाँ जमैकन यैलो बोआ नाम का एक स्थानीय साँप ज़रूर था। हालाँकि यह एक ऐसा घुसपैठिया था जो नुकसान नहीं पहुँचाता था, लेकिन अगर वह रेंगता हुआ किसी घर में पहुँच जाता तो डर के मारे लोगों के होश उड़ जाते थे। मैं हर जगह भागता रहता था और मुझे बस यहाँ से वहाँ भागना और खेलना अच्छा लगता था। जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ, लगभग पाँच-छः साल का, तो मुझे क्रिकेट का बुखार चढ़ गया, और जब भी मुझे घर से बाहर जाने का मौका मिलता, मैं क्रिकेट खेला करता, अपने दोस्तों के साथ बैटिंग या बॉलिंग करता रहता। हम क्रिकेट खेलने के लिए ज़्यादातर तो टेनिस बॉल का उपयोग करते थे पर जब भी हम कोई बड़ा छक्का मारते और गेंद पेड़ों में या फिर पास ही बने गायों के तबेले में चली जाती, तो मैं रबर बैण्ड या पुरानी डोरियों की गेंद बना लेता। फिर हम लोग घर में बनाई गई गेंदों से घण्टों बॉलिंग करते और उन्हें

स्पिन भी कराते। विकेट (स्टम्प) बनाने में तो मेरा दिमाग और भी ज़्यादा चलता था। मैं किसी केले के पेड़ के तने से बड़ी-सी छाल उखाड़ लेता। फिर उसमें तीन स्टम्प उकेरता और उसके तले को तब तक छीलता रहता जब तक वह बिलकुल सपाट न हो जाए। इस तरह वह ज़मीन पर खड़ा हो पाता था। अगर हमें बहुत जल्दी मचती तो हम विकेटों की जगह पत्थरों का ढेर बनाकर या फाड़े हुए गत्ते के डिब्बे को रखकर ही खेलने लग जाते थे।

पर ज़िन्दगी बस मज़ा-मौज ही नहीं थी। छोटी उम्र में भी मुझे घर के कामों में हाथ बँटाना पड़ता था, और कभी-कभी तो मुझे इतना काम करना पड़ा है कि पूछो मत! डैड को चिन्ता थी कि काम के प्रति और मेहनत के प्रति मेरा वैसा समर्पण नहीं बन पाएगा जैसा बचपन में ही खुद उनका बन गया था। इसलिए जैसे ही मैं थोड़ा बड़ा हुआ तो वे मुझे घर के और उसके आसपास के छोटे-मोटे काम करने को कहने लगे जैसे, झाड़ू लगाना। ज़्यादातर समय तो मुझे इस तरह के काम करने में कोई दिक्कत नहीं होती थी, लेकिन अगर कभी मैं काम छोड़कर भाग जाता तो डैड बड़बड़ाना शुरू कर देते।

"ये लड़का तो बहुत आलसी है," डैड बार-बार कहते। "इसे घर के कुछ और काम भी करना चाहिए।"

जब मैं बड़ा हो गया और मेरे शरीर में ताकत आ गई तो मुझे घर के शारीरिक मेहनत वाले काम दिए जाने लगे और मुझे इससे बहुत चिढ़ होती थी। उस समय हमारे घर में पानी की पाइपलाइन नहीं थी। मेरा काम था पास की नदी से बाल्टियाँ भरकर घर के आँगन में रखे चार ड्रमों में डालना। हर हफ्ते, अगर डैड घर पर होते, मुझे उन ड्रमों को भरने का आदेश दे दिया जाता। और मेरी शामत आ जाती क्योंकि हर ड्रम में 12 बाल्टी पानी आता था जिसका मतलब था 48 बार नदी पर जाना और इतनी ही बार वापस आना। यह बहुत कठिन काम था क्योंकि बाल्टी काफी भारी होती थी और मैं बाल्टी ढोने के इस काम से पीछा छुड़ाने के लिए कुछ भी करता था।

फिर मुझे समझ आया कि ड्रमों को भरने के लिए 48 बार नदी तक आना-जाना तो बहुत ज़्यादा है। उसमें तो बहुत समय लग जाता था। इसलिए मैं एक बार में दो बाल्टियाँ ले जाने लगा। हालाँकि इस दोहरे वज़न के कारण घर पहुँचने में मुझे कठिनाई होती। इस अतिरिक्त और कष्टदायी मेहनत के बावजूद मैं तो यही समझ रहा था कि मैं अपनी मेहनत और समय बचा रहा हूँ। लेकिन एक साथ दो बाल्टियाँ उठाने से मेरा काफी शारीरिक विकास हुआ। मुझे महसूस होता था कि मेरी बाँहें, पीठ और पैर हफ्ते-दर-हफ्ते मज़बूत होते जा रहे थे। घर के काम कर-कर के मेरी मांसपेशियाँ मज़बूत हो गई थीं, और बिना जिम जाए या वज़न वाले उपकरण उठाए अच्छी-खासी मांसपेशियाँ बनाने की दिशा में ये मेरे शुरुआती कदम थे। मेरा आलस दरअसल मुझे ताकतवर बना रहा था। चलने, पेड़ों पर चढ़ने और दौड़ने के साथ--साथ डैड द्वारा कराए जाने वाले घर के कामों से मैं बड़ा और शक्तिशाली बनता जा रहा था।

मज़े की बात ये है कि मॉम ने कभी मुझे कोई ऐसा काम करने के लिए मजबूर नहीं किया जो मैं नहीं करना चाहता था, उस समय तो बिलकुल नहीं जब डैड घर पर नहीं होते थे। अगर मैं कुछ ज़्यादा ही बुदबुदाते हुए मॉम से शिकायत करता तो मुझे बाल्टी भरने की ड्यूटी से भी छुट्टी मिल जाती और डैड को इस बारे में कभी

रेस जीतने के बाद उसैन

पता भी नहीं चलता था। तब ज़रूर मुझे उनके उपदेश सुनने पड़ते जब कभी वे काम पर से जल्दी घर लौट आते और मुझे कामचोरी करता देख लेते। तब उनका बड़बड़ाना शुरू हो जाता और वे कहते कि मॉम मुझसे कुछ ज़्यादा ही प्यार करती हैं। शायद उनकी बात ठीक ही थी क्योंकि मैं अपनी मॉम का इकलौता बच्चा था इसलिए हमारा रिश्ता ज़्यादा ही खास था।

लेकिन कभी-कभी डैड ज़्यादा ही सख्ती करते थे। उन्हें मेरा घर से बाहर फिरना अच्छा नहीं लगता था और अगर वे घर पर होते और मैं खेल रहा होता तो वे मुझे आँखों से ओझल नहीं होने देते थे। उनके रहते आमतौर पर मुझे घर के आँगन में ही खेलना पड़ता था। लेकिन जब डैड काम पर गए हुए होते तो मॉम मुझे घूमने-फिरने की खुली छूट दे देतीं। हालाँकि मैं भी बेवकूफ नहीं हूँ। मैं जहाँ कहीं भी होता, डैड की मोटरसाइकिल की आवाज़ पर कान लगाए रहता जो ढलान पर से गाँव की तरफ आते हुए फट-फट-फट-फट की आवाज़ करती थी। जैसे ही उसके इंजन की आवाज़ मेरे कानों में पड़ती, मैं जो भी काम कर रहा होता, उसे उसी समय छोड़कर जितना तेज़ बन पड़ता उतनी तेज़ी-से घर की तरफ भागता, और अकसर डैड को कुछ सन्देह हो पाए उसके पहले ही मैं घर पहुँच जाता था।

कभी-कभी मैं चोरी-छुपे अपने एक दोस्त के घर खेलने पहुँच जाता। उसका घर उस रास्ते से काफी दूर था जो आमतौर पर डैड घर वापसी के लिए लेते थे। हालाँकि वहाँ से डैड की उस पुरानी मोटरसाइकिल की आवाज़ सुनना काफी मुश्किल हो जाता था, लेकिन मेरे पास इसकी भी एक तरकीब थी। जब मैं घर से दबे पाँव निकलता था तो हमारे कुत्ते, ब्राउनी, को भी अपने साथ ले लेता था। जैसे ही डैड की बाइक फट-फट करके घर की ओर आने लगती, तो और कोई उसकी आवाज़ सुन पाए या नहीं, ब्राउनी के कान ज़रूर खड़े हो जाते थे। ब्राउनी का वहाँ से जाने के लिए हरकत करना मेरे लिए इशारा होता भागने का। एक तरह से वह मुझे मेरी आने वाली ज़िन्दगी का अनुभव करवा रहा होता था:

बन्दूक की आवाज़ का इन्तज़ार और फिर...

बैंग!

भागना शुरू!

तो मेरा पहला प्रशिक्षक एक कुत्ता था। हद हो गई!

मेरे परिवार के बारे में आपको कुछ बताऊँ। मेरा एक छोटा भाई है, सडीकी, और एक बड़ी बहन है, क्रिस्टीन। लेकिन हम सब की माँ अलग-अलग हैं। बहुत-से लोगों को यह अजीब लगेगा, लेकिन जमेका में ऐसा हो जाता है। दो अन्य स्त्रियों से भी डैड के बच्चे हैं, और मेरे पैदा होने के समय तो मेरे मॉम-डैड की शादी भी नहीं हुई थी। लेकिन मेरी मॉम को मेरे डैड की दूसरी सन्तानों से कोई दिक्कत नहीं थी और जब कभी भी सडीकी और क्रिस्टीन हमारे घर कॉक्सहीथ रहने आते तो मॉम उनके साथ ऐसे ही व्यवहार करतीं जैसे वे दोनों भी उनके अपने बच्चे हों।

जब मैं बड़ा हुआ और समझने लगा कि रिश्ते-नाते, प्यार-मोहब्बत और शादी का क्या मतलब होता है, तब भी हमारी परिवार की इस अनोखी स्थिति से मुझे कोई परेशानी नहीं हुई। जब मैं 12 साल का था तो मेरे मॉम--डैड ने आखिरकार शादी कर ही ली और शादी के दिन बस एक बार मेरा दिमाग खराब हुआ था जब मुझे 'रिंग बॉय' नहीं बनाया गया था जिसका ओहदा 'बेस्ट मैन' के बराबर होता है। मेरी इच्छा थी कि समारोह में मॉम को पहनाने के लिए अँगूठी डैड को मैं दूँ, शादी की इस गतिविधि में भी शामिल रहूँ, लेकिन यह ज़िम्मेदारी गाँव के किसी और व्यक्ति को दे दी गई, शायद इसलिए कि मैं बहुत छोटा था।

मुझे इस बात से कोई परेशानी नहीं थी कि मेरा एक सौतेला भाई और एक सौतेली बहन है, मुझे तो यह बहुत स्वाभाविक लगता था। वैसे भी रिश्तों और दोस्तियों के प्रति हमारे परिवार का रवैया खुला, और इत्मिनान वाला है, कड़ा और रूढ़िवादी नहीं। इन्हें लेकर हम कोई असुरक्षा महसूस नहीं करते और ज़रूरत से ज़्यादा परवाह नहीं करते। एक-दूसरे से बात करते वक्त भी हम लोग बहुत व्यक्तिगत बात करने में भी कोई संकोच नहीं करते। मैं अपने मॉम-डैड के इतने करीब हूँ कि उनसे किसी भी बारे में बात कर सकता हूँ। आजकल तो इस बात की भी सम्भावना होती है कि फोन पर मॉम-डैड से बात करते वक्त उन दोनों की सेक्स लाइफ की बात होने लगे, खासतौर से तब जब डैड बात कर रहे हों।

चक मक

अनुवाद: भरत त्रिपाठी

गहरा समुन्दर और उसके तीन तरफ ऊँचे पर्वत

चित्रा विश्वनाथन

हमारी स्कैण्डिनेविया यात्रा का अन्तिम पड़ाव नॉर्वे था। हम स्वीडन देश के एक छोटे शहर फालुन से बस में सवार होकर चले। रास्ते के नज़ारों का आनन्द लेते हुए हम नॉर्वे की पूर्वी सीमा पारकर एक कस्बा, लिल्हैम्मर पहुँचे।

नॉर्वे के नाम से मेरे मन में झील, फ्योर्ड और झरनों की तस्वीरें घूमने लगती हैं। यहाँ देश भर में ज़बर्दस्त हरियाली के साथ पानी के विविध रूप देखने को मिलते हैं। यहाँ के नज़ारे सचमुच साँस रोकने वाले हैं। यह सुरंगों का भी देश है। पर्वतीय इलाका होने के कारण यहाँ पहाड़ों को खोदकर रास्ते बनाए गए हैं। हर दिन हम कम से कम दस-पन्द्रह सुरंगों से गुज़रते थे।

लिल्हैम्मर की आबादी 30,000 से भी कम है फिर भी वह प्रसिद्ध है क्योंकि वह बर्फ में खेले जाने वाले खेलों खासकर स्कीइंग का केन्द्र है। यहाँ पर सन् 1994 में शीतकालीन ओलम्पिक प्रतियोगिताएँ हुई थीं। ठण्ड के दिनों में जब बर्फबारी या हिमपात होता है तब दुनिया भर से सैलानी यहाँ स्कीइंग के लिए आते हैं। उन दिनों यहाँ खूब जमघट रहता है। लेकिन हमारे पहुँचने पर शहर खाली था। हम तो गर्मियों में पहुँचे थे इसलिए बर्फ जमी नहीं थी। वैसे हमारे यहाँ की तुलना में वहाँ फिर भी काफी ठण्ड थी। हम स्वेटर और मोटे जैकिट पहने हुए थे।

फ्लाम नदी, नॉर्वे

स्कीइंग

कहते हैं कि यह खेल और बर्फ पर आने-जाने का यह साधन नॉर्वे की देन है। ‘स्की’ शब्द भी नॉर्स भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ‘लकड़ी की फाक’। ठण्ड के दिनों में वहाँ बर्फ की मोटी परत जम जाती है। बर्फ में पैर धँस जाते हैं। उस पर पैर उठाकर चलना कठिन हो जाता है। लेकिन उस बर्फ या हिम पर फिसला जा सकता है और वह भी बहुत तेज़ी-से। इसके लिए दोनों जूतों के नीचे लकड़ी के पटिए बाँधे जाते हैं। इनमें से एक पटिया लम्बा होता है। इसका अन्तिम सिरा मुड़ा हुआ होता है। इससे पैर फिसलते हैं। दूसरा पटिया कुछ छोटा होता है, इसकी मदद से अपने-आप को धक्का देते हैं। लम्बे वाले पटिए के नीचे चरबी या मोम मला जाता है ताकि फिसलने में मदद मिले। इसी तरह छोटे पटिए के नीचे जानवर की खाल चिपकाई जाती है ताकि बर्फ को आसानी से धक्का दे सकें। दोनों हाथों में लम्बे भाले रखे जाते हैं ताकि मुड़ने में या अपने-आप को रोकने में आसानी हो।

पुराने समय में नॉर्वे के लोग ठण्ड के दिनों में आने-जाने के लिए इनका उपयोग करते थे। लेकिन आजकल यह एक लोकप्रिय खेल बनता जा रहा है जिसका ओलम्पिक में भी बड़ा स्थान है। बर्फ वाले खेलों के लिए अलग ओलम्पिक खेल का आयोजन किया जाता है ठण्ड के महीनों में। मीलों तक बर्फीली ढलानों पर तेज़ी-से फिसलते हुए, छोटी-बड़ी रुकावटों को पार करते हुए पहाड़ों की कगार पर जाकर नीचे कूदना...। यह खेल जोखिम भरा मगर बहुत ही रोमांचक होता है। भारत में भी यह खेल शुरू हुआ है - कश्मीर में गुलमर्ग और शिमला के पास कुफ्री में स्कीइंग करने सैलानी जाते हैं।

स्की रेस, लिल्हैमर

छत पर घास-फूस
लगे हुए तोर्वाक

डेनमार्क और स्वीडन की तरह यहाँ भी एक खुला संग्रहालय था जिसमें उन्नीसवीं सदी के एक गाँव को संजोकर रखा गया है। कुछ लोग उन दिनों की पोशाक में थे और हमें उन गाँवों के जीवन के बारे में बता रहे थे। मुझे उन पुराने घरों की छत बहुत रोचक लगी। उन पर घास-फूस और फूलदार पौधे लगे हुए थे और कई पक्षियों के घोंसले भी दिख रहे थे। वे इसे तोर्वाक कहते थे। उन लोगों ने समझाया कि छत पर भूर्ज या संटी पेड़ की छाल बिछाई जाती है। यह छाल पानी को रिसने नहीं देती है। इसके ऊपर धूल-मिट्टी बिछाई जाती है। उसके ऊपर घास और पौधे को उगने दिया जाता है। इनके बीच तरह-तरह के कीड़े-मकौड़े तो पलते ही हैं, उन्हें खाने के लिए पक्षी भी आ जाते हैं। कुछ तो घोंसला भी बना लेते हैं। कहीं-कहीं हमें छत पर बकरियाँ भी घास चरती हुई दिखीं। मिट्टी बिछे होने के कारण ठण्ड में घर के अन्दर गर्मी बनी रहती है और गर्मी के मौसम में ठण्डा रहता है। अगर हम भी ऐसे तरीकों को आज़माएँ तो बिजली का खर्चा कम होगा और पर्यावरण का बचाव भी होगा। घर के अन्दर जाकर देखा तो एकदम सन्नाटा था। बाहरी आवाज़ों को मिट्टी की छतें व घास सोख लेती हैं और अन्दर एकदम शान्ति बनी रहती है। है न सुन्दर बात... हमें भी आज़माकर देखना चाहिए।

एक-दो दिन हम उस कस्बे के आसपास पैदल घूमकर छोटे-छोटे झरनों और झीलों को देखते रहे। यहाँ के दिन तो और भी लम्बे थे (उत्तरी ध्रुव के नज़दीक जो था)। हमें घूमने के लिए और ज़्यादा समय मिला। लिल्हैम्मर से हम एक छोटे-से बहुत सुन्दर गाँव पहुँचे जिसका नाम फ्लैम था। यहाँ के फ्योर्ड और रेल लाइन बहुत प्रसिद्ध हैं। हम तो सीधे रेलवे स्टेशन पहुँचे। यहाँ ट्रेन 20 किलोमीटर लम्बे ट्रैक पर तेज़ ढलानों से होते हुए लगभग 840 मीटर ऊँचाई पर चढ़ती है। कहते हैं कि यह दुनिया का सबसे तेज़ ढलान वाला रेलवे है। हम ट्रेन में चढ़कर बैठ गए। एक घण्टे के सफर में हम कई सुरंगों, शानदार जलप्रपात, नदी, खाई और पहाड़ों के नज़ारे देखते हुए गए। 20 किलोमीटर चलकर ट्रेन मिर्डल नामक जगह पर रुकी। हम उतरकर प्लेटफार्म पर घूमे और उसी ट्रेन से फ्लैम लौटे।

अगले दिन नाश्ते के बाद हम एक यात्री नाव में सवार होकर फ्योर्ड की सैर पर निकले। पहले मैं यही सोचती थी कि फ्योर्ड समुद्र का वह हिस्सा है जो दो पहाड़ों के बीच घुस आया है। हमने पाया कि फ्योर्ड के तीन तरफ ऊँचे और खड़ी ढाल वाले पहाड़ होते हैं और एक तरफ समुद्र। ये बहुत गहरे, लम्बे मगर संकरे होते हैं। चलते-चलते हमारे गाइड ने हमें समझाया कि ये कैसे बनें और इस तरह क्यों हैं। नॉर्वे का लगभग पूरा तटीय भाग इस तरह के फ्योर्डों से बना है।

गहरे, नीले पानी के ऊपर नाव में बैठकर तीन तरफ के ऊँचे पहाड़ों को और उनकी ऊँचाईयों से गिरते जलप्रपातों को देखना बहुत ही अद्भुत अनुभव था।

मैंने कहा था कि हम नाव में सवार हुए। मगर ये हमारे यहाँ की नाव जैसी नहीं थीं बल्कि तीन मंज़िला नाव थी जिसमें एक रेस्तरां भी था। नाव की सवारी में हमने कई छोटे-बड़े फ्योर्ड देखे मगर सबसे खूबसूरत तो नेयर् फ्योर्ड था। इनमें सबसे गहरा और लम्बा था - सोने फ्योर्ड। शुरू में हमारे साथ बहुत सारे सीगल पक्षी आए लेकिन जब उन्होंने देखा कि हम मछली पकड़ने नहीं आए हैं तो उड़ गए। इस नाव यात्रा के अन्त में हम गुडवैंजन पहुँचे जहाँ हमारी बस हमारा इन्तज़ार कर रही थी। वहाँ से हम कई छोटे-बड़े शहरों से होते हुए नॉर्वे की राजधानी ऑसलो पहुँचे। कोपनहेगन और स्टॉकहोम की तुलना में यह मुझे कम भाया क्योंकि इसमें भीड़-भड़क्का अधिक था और बड़ी-बड़ी इमारतें बन रही थीं। लेकिन एक अच्छी बात यह लगी कि वहाँ ट्राम चलती हैं जिसमें सवार होकर मैं दिन भर अलग-अलग जगह देखने गई। दिन में हमने एक भारतीय होटल जयपुर में खाना खाया। सुदूर उत्तर के किसी देश में अपने देश के खाने का स्वाद कितना अच्छा लगता है।

ऑसलो हमारे अनुबन्धित टूर का आखरी पड़ाव था। हमने अपने गाइड और अन्य सह-यात्रियों से विदा ली। अगले पाँच दिन हम और उत्तर में ध्रुवीय वृत के अन्दर एक गाँव में रहने जा रहे थे। उसके बारे में अगले अंक में।

फ्योर्ड

हज़ारों साल पहले पूरा उत्तरी यूरोप बर्फ से ढँका था। जहाँ-तहाँ बर्फ की नदियाँ धीरे-धीरे खिसकती हुई बहती थीं। तब पृथ्वी के पानी का बहुत बड़ा हिस्सा बर्फ के रूप में ज़मीन पर जमा था। जब तापमान बढ़ने लगा और बर्फ पिघलने लगी तो बर्फ की नदियाँ (इन्हें हिमनद कहते हैं) भी पिघलने लगीं। इन हिमनदों ने पहाड़ों के बीच गहरी 'यू' आकार की घाटियों का निर्माण किया। भारी मात्रा में बर्फ के पिघलने से समुद्र का स्तर ऊँचा होने लगा और समुद्र का पानी इन घाटियों में भरने लगा। इस तरह फ्योर्ड बने। इनमें खारा पानी होता है और ये बहुत गहरे होते हैं।

चुटफुट

मुकेश मालवीय

चित्र: शुभम लखेरा

हमेशा गुस्से में रहने वाली एक शिक्षिका ने कक्षा में एक लड़के से पूछा, "बड़े होकर क्या काम करोगे?" लड़के ने डरते हुए जवाब दिया, "मैं बड़ा होकर... बड़ा काम करूँगा।" लड़के की बात पर पहले शिक्षिका हँसी, बाद में पूरी कक्षा हँसी। शिक्षिका ने कहा, "हँसना-हँसाना सचमुच बड़ा काम है।"

हँसने-हँसाने का बड़ा काम थोड़ा-थोड़ा करते हुए लड़का बड़ा हुआ। एक दिन उसे एक आइडिया आया कि पान की दुकान की तरह चौक पर चुटकुले की एक दुकान होनी चाहिए जिसमें नए-नए चुटकुले मिलते हों। कोई खा-पीकर दुकान पर आए और कहे, "एक पाचक चुटकुला देना" या कोई गुस्से में गरम होकर आए और बोले, "भाई एक-दो ठण्डाई वाले चुटकुले सुना दो।" किसी को नेताजी वाले पसन्द होंगे, किसी को फौजी वाले।

इस दुकान की ओपनिंग होती इसके पहले ही उस लड़के की नौकरी सेना में लग गई। वह सैनिक बनकर सीमा पर तैनात हुआ।

सीमा के उस पार एक दूसरा सैनिक था। जब वह स्कूल में था तब से उसे भूख बहुत लगती थी। उसकी अम्मा उसकी स्कूल यूनिफॉर्म की जेब में फुटाने भरकर स्कूल भेजतीं और कहतीं, "अकेले नहीं, साथियों में बाँटकर खाना।" बड़ा होने पर

भी उसकी यह आदत गई नहीं। नौकरी करने जब वह घर से निकला तो अम्मा ने उसके लिए खूब सारे चने भूँजकर रख दिए। अम्मा को मालूम था कि वह अकेला नहीं खाएगा।

सीमा पर कँटीले तार खिंचे हुए थे। इस पार यह सैनिक अपनी वर्दी की जेब में फुटाने भरे कँटीले तार के किनारे-किनारे सूरज डूबने की दिशा में रौबदार चाल से चलता। उस पार वह सैनिक कुछ सोचते, मुस्कुराते सूरज उगने की दिशा में जोश से चलता। एक-दो घण्टे बाद जब यह सैनिक सूरज उगने की दिशा में जा रहा होता तब वह सैनिक सूरज डूबने की दिशा में।

कुछ समय बाद इस पार के सैनिक को ज़ोर की भूख लगी। उसे फुटाने की याद आई, साथ ही किसी साथी की भी। उस पार वाला सैनिक तो सूरज उगने वाली दिशा में जा रहा था। इस पार वह भी उसी दिशा में चलने लगा। उधर वाले सैनिक को एक ताज़ा चुटकुला याद आया था। उसने मुस्कराते हुए इस पार वाले सैनिक को देखा।

उसे मुस्कराते देख इधर वाला सैनिक बोला, "भाई मुझे भूख लगी है, तुम फुटाने खाओगे?"

इस सैनिक ने मन में सोचा, "भूख इसे लगी है और फुटाने मुझे खिलाएगा? यह बात तो चुटकुले की तरह मज़ेदार और बड़ी है।"

इसने कहा, "क्या तुम मेरे चुटकुले सुनोगे?"

इस तरह उस दिन दोनों ने फुटाने खाते और चुटकुले सुनते हुए अपनी-अपनी ड्यूटी पूरी की।

अगले दिन सीमा के इस पार कुछ और सैनिक थे फुटाने खाने के लिए। और उस पार भी कुछ ज़्यादा सैनिक थे चुटकुले सुनने के लिए। शुक्र है, उन कँटीले तारों में से हँसी और स्वाद आर-पार जा सकता था।

चकमक

झुनझुनी

झनझन-झनझन, चढ़ी झुनझुनी।

सोकर जब मैं उठी सवेरे
हाथ-पैर में जैसे मेरे
काँटे चुभने लगे ज़ोर-से
हुई बदन में शुरू चुनचुनी।
झनझन-झनझन, चढ़ी झुनझुनी।

पैर उठे ना, मैं चिल्लाऊँ
बाँध नहीं मैं मुट्ठी पाऊँ।
तुन-तुन-तुन-तुन बेचैनी की
मन में बजने लगी, तुनतुनी।
झनझन-झनझन, चढ़ी झुनझुनी।

एड़ी और हथेली कसकर
रगड़ी मम्मी ने जब हँसकर
उतर भागी यह, नाच उठी मैं
धिनक-धुनक-धिन-धाक-धुनधुनी।
झनझन-झनझन, चढ़ी झुनझुनी।

शादाब आलम
चित्र: नीलेश गहलोत

झुनझुनी चढ़ती क्यों है?

प्रतिका गुप्ता

गर्मी की छुट्टियाँ थीं। दोपहर का समय था। बोर होते-होते मैं सो गई। फ्रैंड ने खेलने के लिए आवाज़ लगाई। मैं भी फटाफट उठकर जाने को हुई। पर जैसे ही उठने को हुई, मैं गिर पड़ी। मेरा दायाँ पैर भारी-भारी सा था और कदम उठाते नहीं बन रहा था। लगा कि उसमें जान ही नहीं है। एक बार फिर पैर उठाने की कोशिश की तो ऐसा लगने लगा मानो हज़ारों हलकी सुइयाँ मेरे पैर में चुभ रही हैं। झुनझुनी चढ़ गई थी। एक-दो मिनट बाद यह एहसास खतम हो गया।

झुनझुनी तो सब को चढ़ती है। जब कोई बहुत देर तक एक ही जैसी स्थिति में बना रहता है खासकर जब हाथ या पैर पर दबाव भी बना रहता है तो ऐसा होता है। बहुत देर तक पालथी मार के बैठे रहने से, एक के ऊपर एक पैर रखे रहने से, हाथ का तकिया बना के सोने से या हाथ टेके रहने से वगैरह। इन स्थितियों में लगातार रहने से हाथ या पैर में भारी-सा लगने लगता है, सुन्न भी पड़ जाते हैं। हाथ या पैर 'सो' जाते हैं। स्थिति बदलने पर, दबाव कम होने पर उस जगह झुनझुनी चढ़ती है। कुछ देर हाथ-पैर ऐसे ही छोड़ देने पर वो ठीक हो जाती है। कुछ लोग कहते हैं कि उस हिस्से को हलका-हलका सहलाने से थोड़ा जल्दी ठीक हो जाती है।

झुनझुनी के बारे में जानने के लिए 1940 के दशक में कुछ प्रयोग किए गए थे। इसके लिए पहले लोगों में झुनझुनी चढ़ाई गई फिर उसका अध्ययन किया गया। इसके लिए ब्लड प्रेशर की मशीन का लोगों पर इस्तेमाल किया गया। दस-बारह मिनट के लिए कोहनी से थोड़ा ऊपर बाँह पर दबाव बनाए रखने के बाद जब मशीन का पट्टा हटाया गया तो सब को झुनझुनी का एहसास हुआ। किसी को हलकी-हलकी सुइयाँ चुभने जैसा एहसास हुआ तो किसी को झनझनाहट महसूस हुई। कुछ लोगों ने कहा कि उनको ऐसा लगा मानो चींटियाँ बाँह पर दौड़ रही हों। इन लोगों ने यह भी पाया कि बाँह या हाथ सभी जगहों पर झुनझुनी एक जैसी नहीं चढ़ती। कोहनी के ऊपर या पास दबाव बनाए रखने पर झुनझुनाहट ज़्यादा होती है लेकिन उँगली को दबाए रखने पर कम होती है।

इस बात को थोड़ा और जाँचने पर समझ में आया जब दबाव हमारी तंत्रिकाओं पर पड़ता है तो झुनझुनी का एहसास होता है। हमारे शरीर में बहुत सारी धागे जैसी दिखने वाली तंत्रिकाएँ फैली रहती हैं। ये मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी में मौजूद मेरु रज्जु (स्पाइनल कॉर्ड) से निकलती हैं और शरीर के सभी हिस्सों से जानकारियाँ (सन्देश) मस्तिष्क तथा मेरु रज्जु को भेजती हैं। (इन जानकारियों के आधार पर मस्तिष्क या मेरु रज्जु सम्बन्धित अंगों को अन्य तंत्रिकाओं के ज़रिए काम करने का आदेश देते हैं।)

जब इनमें से किसी तंत्रिका के काम में किन्हीं कारणों से रुकावट आती है, जैसे लगातार दबाव पड़ने से, खून या ऑक्सीजन की कमी से, तो शरीर के उस हिस्से से संकेत मस्तिष्क या मेरु-रज्जु तक नहीं पहुँच पाते। जब ऐसा हाथ, बाँह, टाँग या पैर में होता है तो वो हिस्सा सुन्न पड़ जाता है। जब दबाव हट जाता है तो उस हिस्से में फिर से खून बहने लगता है और तंत्रिका द्वारा संकेतों का भेजा जाना शुरू हो जाता है। इस समय झुनझुनी का एहसास होता है।

इन्हीं प्रयोगों से एक और बात समझ में आई। झुनझुनी की तीव्रता का नाता इस बात से नहीं है कि तंत्रिका के किस हिस्से पर कितना दबाव डाला जा रहा है। तीव्रता का मतलब है तंत्रिका के कितने बड़े हिस्से पर दबाव पड़ रहा है। जितना बड़ा हिस्सा होगा, झुनझुनी की तीव्रता उतनी ही ज़्यादा होगी।

वैसे झुनझुनी हाथ-पैर के अलावा शरीर के किसी अन्य अंग में होते हुए नहीं सुना। लेकिन पता चला कि दाँतों के डॉक्टर जब मसूड़ों में लोकल ऐनेस्थीसिया लगाते हैं तो होठों या जीभ में झुनझुनी हो सकती है। शरीर के जलने के बाद घाव पर इसका एहसास कुछ समय तक हो सकता है। उम्र के साथ शरीर में खून के बहाव में दिक्कतें हो सकती हैं जिनके कारण झुनझुनी बारम्बार होती रहती है। कुछ बीमारियों के साथ भी झुनझुनी होती है और तो और, कुछ खास किस्म की मिर्च जैसे कि 'शेज़्वान' मिर्च खाने से जीभ में झुनझुनी हो सकती है। पर यदि झुनझुनी बार-बार हो रही हो या बहुत देर तक जाती ना हो तो थोड़ी गड़बड़ है... इसे डॉक्टर को दिखा देना चाहिए।

पहाड़ बाँधने का खेल

विनोद कुमार शुक्ल
चित्र: हबीब अली

भैरा ने बताया, “इसी रस्सी से मैंने होटल को बाँधा है।”

रस्सी के दूसरे छोर से होटल को किस तरह बाँधा गया है, यह दिखा नहीं। बजरंग महराज के कारण अन्दर जाकर देखने की हिम्मत भी नहीं थी। पर, सब लोगों को लग रहा था कि अन्दर रस्सी से बकरी बँधी होगी। क्योंकि, रस्सी हिलती भी दिख रही थी। भैरा आजकल एक काली बकरी को चराने जाता भी है।

पिछवाड़े के उतने हिस्से की सफाई बजरंग महराज ने करवाई थी। बौना पहाड़ से बजरंग होटल का अन्तरंग सम्बन्ध था। यह अन्तरंग सम्बन्ध अन्दर ही अन्दर था। बाहर से भी साफ सम्बन्ध बने इसलिए सफाई करवाई गई होगी। और सफाई से मालूम हुआ कि पहाड़ एकदम सटा हुआ नहीं है। वहाँ थोड़ी दूरी है।

मित्रों ने भैरा से कहा कि पहाड़ को भी वह बाँधकर दिखाए। इतने बड़े पहाड़ को बाँधने में मेहनत लगेगी, सब सहायता कर देंगे।

कूना ने कहा, “भैरा! बाबूलाल होटल को भी बाँधना है। जब खुलता है तभी क्यों दिखता है। बन्द रहने पर भी दिखे।”

इस समय सब भैरा को घेरकर बैठे थे।

बाबूलाल होटल को
बाँधना है जिससे
बन्द रहने पर उसका दिखना दिखे
दिखने से कहीं चला न जाए
अचानक न दिखे
दिखा जैसे दिखे।

भैरा ने कहा, “बाबूलाल होटल के दिखने की बात है। और यह देखू का काम है।”

देखू ने कहा, “बन्द बाबूलाल होटल को देखने में मेरी आँख कमज़ोर है।

मुझे चश्मा लगाना पड़े
होटल देखने का चश्मा
होटल में तब मिले
जब होटल बन्द रहे
और उसमें चश्मे की दुकान खुले।”

अब भैरा को बौना पहाड़ सबके सामने बाँधना था। वह चाहता था पहाड़ को अकेला बाँधे। तब कोई न हो।

बजरंग होटल के पिछवाड़े अन्दर जाकर कुछ देर के लिए भैरा गुम हो गया। लौटा तो उसके हाथ में एक छोटी रस्सी थी। यह रस्सी असल में बकरी बाँधने वाली रस्सी थी। बड़ी रस्सी जिससे बकरी बँधी थी वह दूसरी रस्सी थी, जिसे भैरा कह रहा था कि बजरंग होटल को बाँधा गया है।

कूना ने कहा, “पहाड़ इतना बड़ा है और रस्सी छोटी?”

भैरा ने कहा, “देखो तो! मैं पहाड़ को कैसे बाँधता हूँ!”

जिस खूँटे से बजरंग होटल को बाँधा गया था उसी खूँटे से बौने पहाड़ को वह बाँधना चाहता था। बौने पहाड़ के चारों तरफ लुढ़की हुई धँसी चट्टानें और छोटे-बड़े पत्थर भी थे। खूँटे के पास ही एक गोल पत्थर था। इस गोल पत्थर पर रस्सी के एक छोर को भैरा ने लपेटा और गाँठ लगा दी। और दूसरे छोर को उसी खूँटे से बाँध दिया।

भैरा ने कहा, “पहाड़ को मैंने बाँध दिया।”

कमर पर एक हाथ धरे कूना ने कहा, “अच्छा।”

तभी उसने दूसरे हाथ से अपने माथे को भी ठोंका था, जिसे भैरा ने और सब ने देखा। इस माथा ठोंकने का कूना का आशय था या तो भैरा से हम लोग जान-बूझकर बुद्धू बन रहे हैं या भैरा सबसे बड़ा बुद्धू है।

सबसे ऊँचे पहाड़ को
बाँधा जा सकता है
यदि चढ़ गए उसके शिखर।
पर ऊँचा नहीं बौना पहाड़
गहरा इतना है
जैसे समुद्र के अन्दर
एक समन्दर
उसे बाँधने गहराई में जाकर
डाला जाए लँगर
कि बौना पहाड़
रहना यहीं ठहरकर।

—

पहाड़ बाँधने का खेल
सब खुलकर खेले
पर अन्त खेल का हुआ यही
बजरंग होटल के अन्दर
रस्सी के छोर पर बँधी बकरी
खुलकर बाहर आई
भैरा दौड़ा पकड़ने पहले
सब दौड़े
पर कूद-फाँदकर बकरी
पहाड़ पर चढ़ गई।

बकरी पकड़ने में सबको मज़ा आया था। थककर एक चट्टान पर सब बैठ गए थे।

हाँफती हुई कूना ने याद दिलाया या तकाज़ा किया, "बजरंग होटल को बाँधना अभी बचा है।"

साँस लेकर भैरा ने कहा, "बकरी खुल गई। पर बौना पहाड़ अभी बँधा हुआ है।"

कुछ देर बाद सबने देखा कि पहाड़ से बकरी उतर रही है। लेकिन, उसे पकड़ने की तत्परता किसी ने नहीं दिखाई। बकरी धीरे-धीरे उतर रही थी। बीच-बीच में वह मिमिया रही थी। बकरी उतरकर खुद बजंरग होटल के पिछवाड़े से अन्दर चली गई। अब अन्दर से मिमियाने की आवाज़ आ रही थी।

तभी बजरंग महराज की आवाज़ आई, "भैरा!"

इस आवाज़ को भैरा अनसुना नहीं कर सका। वह तेज़ी-से अन्दर गया।

बजरंग महराज ने भर्राई आवाज़ में कहा, "क्या कर रहा था?"

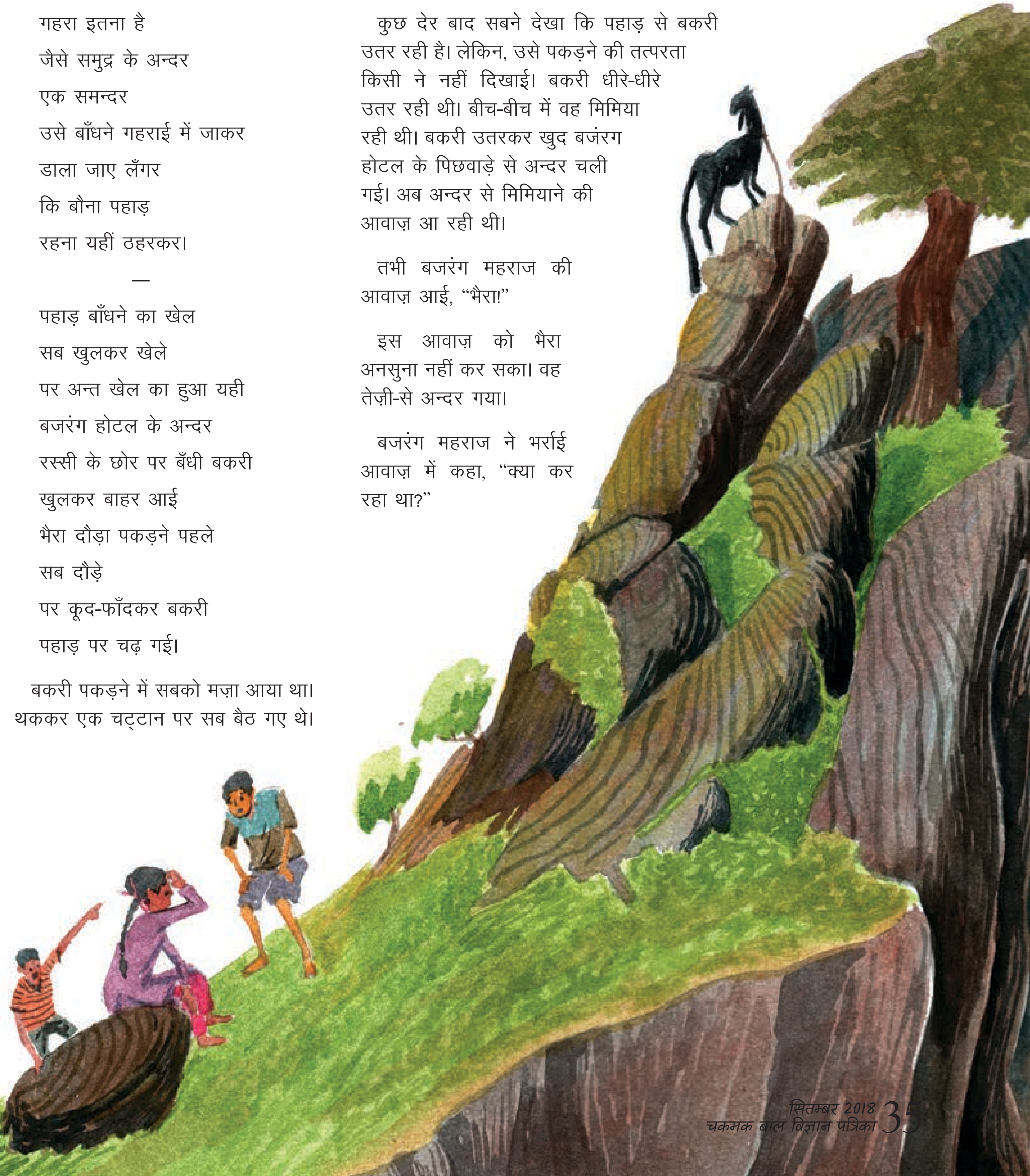

भैरा ने कहा, "बौना पहाड़ को बाँध रहा था।"

बजरंग महराज ने कहा, "बकरी ठीक से बँधती नहीं और पहाड़ बाँधने चला।"

बजरंग महराज की संगत में जंगल से शेर के गरजने की आवाज़ आई। शेर ने बजरंग महराज के कहने का साथ दिया था। बकरी का मिमियाना बन्द हो गया था। वह सिमटकर कोने के अँधेरे में घुसकर खड़ी थी। शेर का गरजना बजरंग महराज की आवाज़ का अनुवाद था या बजरंग महराज की आवाज़ की प्रतिध्वनि थी।

एक तेन्दुए की नज़र बकरी पर थी, ऐसा भैरा को लगता था। पर तेन्दुए की हिम्मत नहीं थी कि वह बकरी पर झपट जाए। भैरा अब पिछवाड़े की तरफ से ही निकलना चाहता था। बजरंग महराज शान्त हो गए थे।

भैरा जैसे ही पीछे से निकलने के लिए मुड़ा, बजरंग महराज ने कहा, "पीछे से नहीं, सामने से जाओ।"

भैरा सामने से निकला। बरामदे की टेबल पर दो ग्राहक बैठे थे। वे भजिया खाने आए थे। वे चुपचाप बैठे थे। भजिया टेबल पर थी। चूँकि वे चुपचाप थे और कुछ नहीं कर रहे थे तो लगता कि भजिया भी निष्क्रिय है। यह सब एक चित्र की तरह स्थिर था। बजरंग महराज की आवाज़ से आसपास स्तब्ध था। थोड़ी देर बाद आसपास एक चलचित्र की तरह होगा – दोनों ग्राहक धीरे-धीरे बात करते भजिया खाएँगे। फिर वहीं भजिया के दाम ज़मीन पर गिराकर चले जाएँगे। चुकता करने की यह अच्छी सुविधा थी। कहीं भी, अभी या कभी जब चुकता करने की किसी को याद आती वे ज़मीन पर सिक्का गिरा दें इसकी छूट थी। और बजरंग महराज की पेटी में वह सिक्का भुगतान की तरह आ जाता था। भैरा सामने से जैसे स्थिरता को चीरता हुआ निकला।

बाहर आकर भैरा दौड़ने लगा। वह अपने मित्रों के पास चला जाना चाहता था। वह एक ज़रूरी बात बताना चाहता था। दौड़ते हुए उनके करीब वह पहुँचा। देखू ने पीछे मुड़कर भैरा को दौड़कर आते देख लिया था। वे रुक गए थे।

बोलू ने पूछा, "भैरा क्या बात है?"

भैरा ने कहा, "एक ज़रूरी बात बतानी है। साँस ले लूँ। पर, तुम सबको मेरी बात का विश्वास नहीं होगा।"

कूना को छोड़ सबने कहा, "भैरा, हमको तुम पर विश्वास है।"

भैरा ने कहा, "कूना को नहीं है।"

तब कूना ने कहा, "मुझे भी तुम पर विश्वास है। साँस ले लो फिर पूरी बात बताना।"

भैरा ने कहा, "वो जो काली बकरी है, मेरे साथ कुछ दिनों से है। मैं उसे चराने नहीं, घुमाने ले जाता हूँ। और तुम लोग समझते होगे कि मैं चराने ले जाता हूँ। दरअसल, वह काली बकरी नहीं काला चीता है। बजरंग होटल में पिछवाड़े के रास्ते एक रात घुस आया था। अँधेरे में था। बजरंग महराज ने मुझे जगाकर कहा था कि डरना नहीं एक बकरी घुस गई है, जाओ उसको बाँध दो। काला चीता अँधेरे में था। मैंने बकरी समझकर उसे बाँध दिया। बजरंग महराज के पास वह बकरी की तरह मिमिया भी रहा था।"

बोलू ने कहा, "डरकर मिमिया रहा होगा।"

भैरा ने कहा, "और बाद में कुछ दिन बाँधते-बाँधते मुझे सचमुच बकरी की तरह दिखने भी लगा।"

देखू ने कहा, "दिखने में वह काला चीता रहा हो, पर व्यवहार में वह बकरी बन चुका था। मेरे देखने ने भी जैसे उसे बकरी स्वीकार किया था। व्यवहार ही नाक-नक्शा तैयार करता है कि असली रूप क्या है।"

कूना ने कहा, "मुझे तो बकरी दिखी। दुबारा जाकर देखूँगी।"

चन्दू ने कहा, "दूर से देखना पास से नहीं।"

बोलू ने कहा, "बकरी बँधी रहेगी तब।"

प्रेमू ने कहा, "खुल भी सकती है।"

बोलू ने कहा, "व्यवहार को परखे बिना सब दूर रहेंगे।"

सब मौलश्री के पेड़ के नीचे खड़े थे। मौलश्री के फल ज़मीन पर पड़े थे। जामुन जितने बड़े पके फलों का रंग सुन्दर नारंगी था। इतने में एक चरवाहा, कई बकरियों को मौलश्री के पेड़ के नीचे ले आया। वह एक बाँस पकड़े था। बाँस के ऊपरी छोर में एक हँसिया बँधी थी। मौलश्री की पत्ती और फलों को बकरियाँ चाव

से खाती हैं। चरवाहा पत्तियों को अभी नहीं तोड़ रहा था। वह जानता था कि मौलश्री के फल खाकर बकरियाँ सन्तुष्ट हो जाएँगी। बकरियाँ फलों को चट करने में जुटी हुई थीं। लगता है उनसे एक भी फल छूटा नहीं। पर वे बकरियाँ मौलश्री के पेड़ के नीचे खड़ी रहीं। पेड़ पर जो फल थे, कभी टपक जाते थे। जिस बकरी के पास फल टपकते, बकरी उसे चट कर जाती। चरवाहा दूर चला गया कि उनके पीछे-पीछे बकरियाँ आएँगी। बकरियाँ नहीं आईं। उसने आवाज़ दी। उसकी आवाज़ से सभी बकरियाँ उछलती-कूदती उसकी तरफ दौड़ पड़ीं। कूना को एक फल दिखा। उसने उसे उठा लिया और खाने लगी।

कूना ने तब कहा, "मैं बकरी की तरह खा रही हूँ।"

बोलू ने कूना से पूछा, "कूना, तुमने अच्छी तरह से देखा, सब बकरियाँ ही थीं न। कोई काला चीता तो नहीं था?"

कूना ने कहा, "हाँ। मैंने एक-एक बकरी के चार-चार पैर देखे कि खुर हैं, पंजे नहीं।"

सबने कहा, "हम सब ने खुर देखकर बकरियों को पहचाना।"

देखू ने कहा, "मैंने व्यवहार देखा। वे व्यवहार में बकरियाँ थीं।"

सबने यह स्वीकार किया कि भैरा की बकरी के पैर की तरफ किसी का ध्यान नहीं गया था। सबका ध्यान व्यवहार पर था, जो वे देख रहे थे।

भैरा ने पूछा, "तुम लोगों ने मेरी बकरी की पूँछ देखी थी?"

सबने कहा, "नहीं देखी।"

देखू ने फिर कहा, "मैंने पूँछ देखी थी, पर पूँछ का व्यवहार बकरी की पूँछ का था।"

जारी... चक मक

शुरुआत गीतों के साथ

खुशी
उमंग स्कूल, गन्नौर
सोनीपत, हरयाणा

सब जानते हैं कि हमारे ज़्यादातर स्कूलों में सुबह के समय होने वाली सभा के नाम पर हाथ जोड़कर, आँखें बन्द करके लाइन में खड़े होकर प्रार्थना होती है। सुबह की सभा में प्रार्थना के अलावा कुछ शारीरिक गतिविधियाँ होती हैं तथा सवाल आदि भी पूछे जाते हैं। इन सबमें मुझे प्रार्थना होना अजीब लगता है। मुझे ऐसा लगता है कि हम सब के घरों में प्रार्थना करने के अलग-अलग तौर-तरीके होते हैं। इस तरह से हम अलग-अलग ढंग से प्रार्थना करना सीखते हैं। अब स्कूल आने के बाद यदि हम किसी दूसरे के तरीकों से प्रार्थना करते हैं तो बुरा लगता है और वह मन से भी नहीं होती है। स्कूल में सब तरह के बच्चे पढ़ते हैं। इसलिए वहाँ सुबह की सभा में ऐसे काम होने चाहिए जो सबको पसन्द आएँ, जिसमें सबकी रुचि हो और किसी भी बच्चे के आत्म-सम्मान को ठेस ना पहुँचे।

हमारे उमंग स्कूल में हम अनोखे ढंग से सुबह की सभा का आयोजन करते हैं। हम सभा में रोज़ नए-नए गीत, बालगीत गाते हैं। यह गीत हमें आम जीवन से आसानी से सुनने को भी नहीं मिलते हैं। यह हमें जल्दी ही याद हो जाते हैं। इन्हें रटना नहीं पड़ता और इनको गाने में मज़ा भी खूब आता है। सभा में हम बातचीत भी करते हैं। यह बातचीत किसी नियम के बारे में हो सकती है या किसी के व्यवहार के बारे में भी। मैं खुश हूँ कि हमारे स्कूल में एक अलग तरीके की सभा होती है जिसमें किसी को भी जबरदस्ती जैसा महसूस नहीं होता।

चित्र: नियति सोनी, पांचवीं, सरदाना इंटरनेशनल स्कूल, देवास

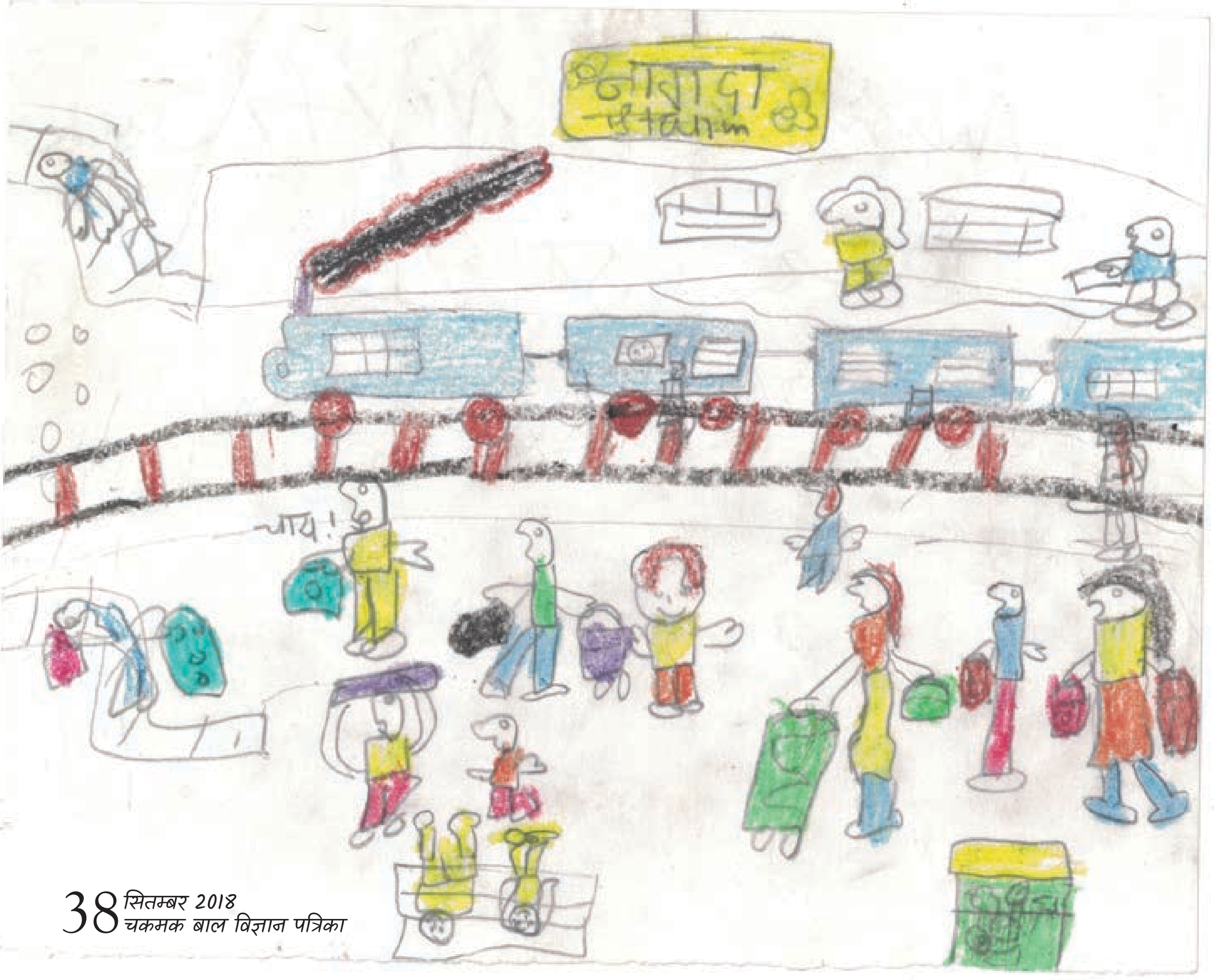

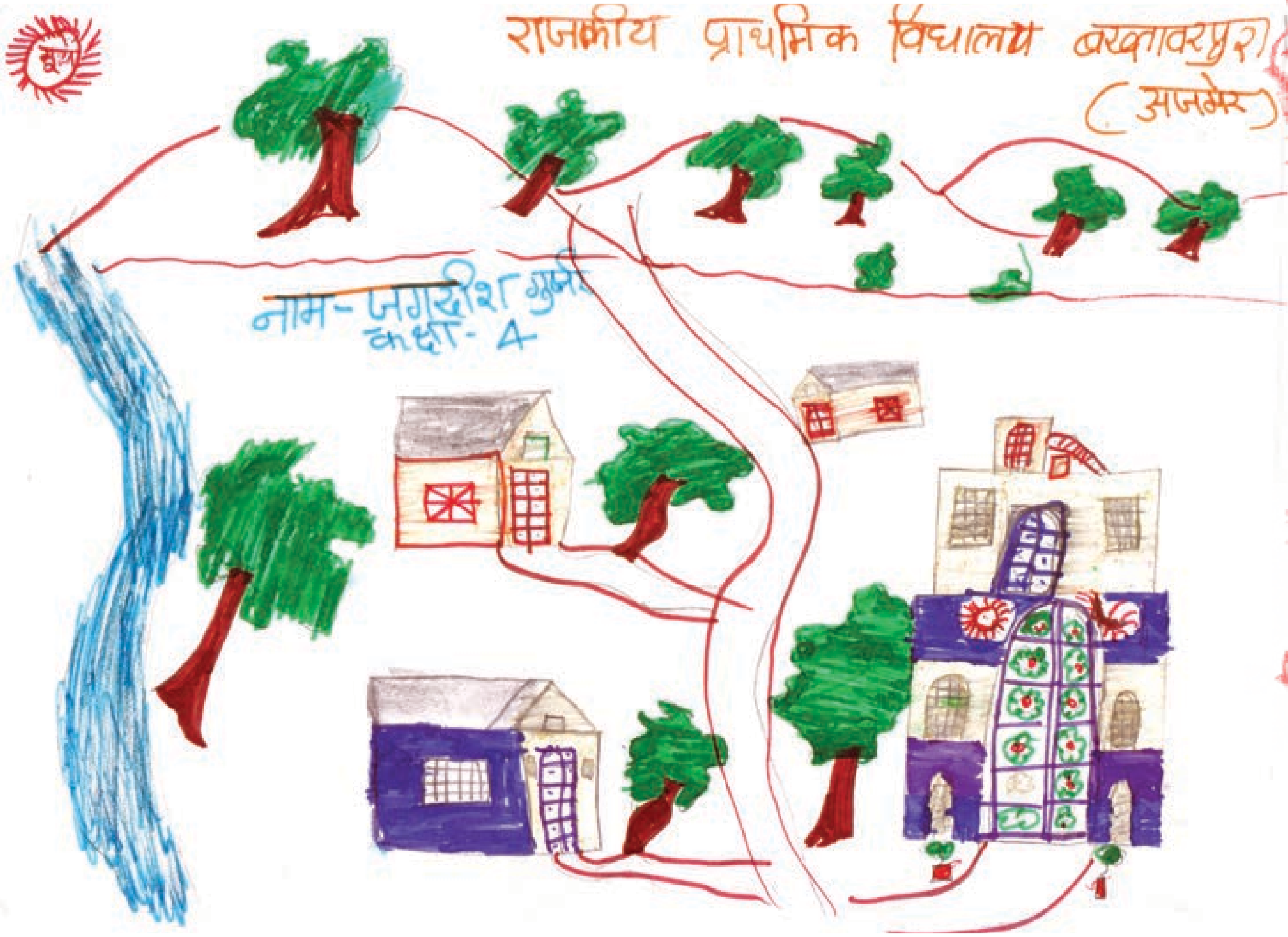

चित्र: जगदीश गुर्जर, चौथी, बख्तावरपुर
अजमेर, राजस्थान

मेरा एक दिन

इशिका खत्री
सातवीं, डीपीएस, पुणे, महाराष्ट्र

ताज़ी-ताज़ी सुबह है आई
हँसकर बोली कानों में
मैं हूँ तेरी गोद में
और तू है मेरी बाँहों में
गुनगुनाती धूप ने आकर
कसकर मारा चाँटा
छाँव के एक टुकड़े ने आकर
ज़ोर से उसको डाँटा
ठण्डी-ठण्डी शाम है बोली
बहुत दूर से हूँ मैं आई
मैं बोली पहले खेल मेरे संग
फिर पिलाऊँगी ठण्डाई
रात आई और मुझसे बोली
जाओ जाके सो जाओ
मैं बोली मैं सो जाऊँगी
पर मुझको चाँद-सितारे दे जाओ

मेरा पन्ना

चीकू कछुआ

सई कुम्थेकर
सातवीं, कमला निम्बकर बाल भवन
फलटण, महाराष्ट्र

हमारे घर में कोई पालतू जानवर नहीं हैं। हमने कभी किसी जानवर को पालने के बारे में सोचा ही नहीं। लेकिन हमारी सोसाइटी के कुएँ में एक कछुआ था। उसकी खाल पर गहरे ग्रे रंग के धब्बे थे और उसका खोल गहरे हरे रंग का था। जब भी हम पार्किंग वाली जगह में जाते मैं कुएँ में झाँकता और दो बार "चीकू, चीकू" पुकारता। वो जल्दी से निकलकर आता और अपने हाथ हिलाता। मुझे लगता जैसे वो हँस रहा हो और कह रहा हो कि मुझे ऊपर ले चलो। मैं तुम्हारे साथ खेलना चाहता हूँ। मैं रोज़ाना स्कूल जाने के पहले उसे बिस्किट देता था।

चीकू हमारे पड़ोसी का कछुआ था। वो उसे समुद्र से लाए थे। जब वो चीकू को लाए थे तब वह काफी छोटा था। हमारे पड़ोसी उसे बहुत प्यार करते थे। हम सब उसका ध्यान रखते थे।

एक दिन मैं हमेशा की तरह स्कूल जा रहा था। मुझे देर हो रही थी इसलिए मैंने अपने एक हाथ में बिस्किट लिया और कुएँ की तरफ दौड़ा। मैंने चीकू, चीकू आवाज़ लगाई लेकिन वो नहीं आया। मुझे देर हो रही थी इसलिए मैं कुएँ में बिस्किट फेंककर चला गया। जब मैं स्कूल से आया तो आई ने बताया कि चीकू मर गया है। मुझे रोना आ गया। मैं चीकू को बहुत मिस करता हूँ।

चित्र: थम्बी, छह वर्ष, कोचीन पब्लिक स्कूल, कोचीन, केरल

माथापच्ची

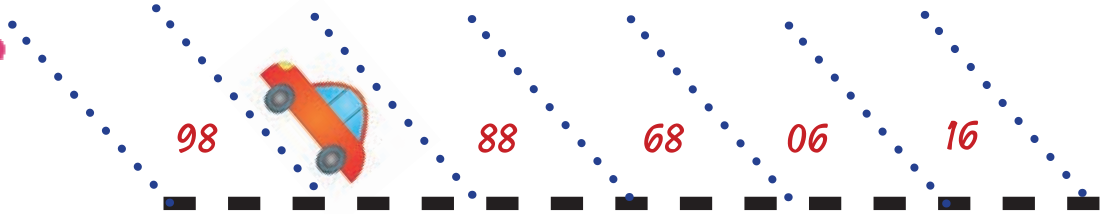

1. क्या तुम बता सकते हो कि यह कार कौन-से नम्बर की लेन में पार्क है?

2. आहना के पास 3 ताले व 3 चाबियाँ हैं। लेकिन उसे यह नहीं मालूम कि कौन-सी चाबी कौन-से ताले की है। यह पता करने के लिए उसे कम से कम कितने प्रयास करने होंगे?

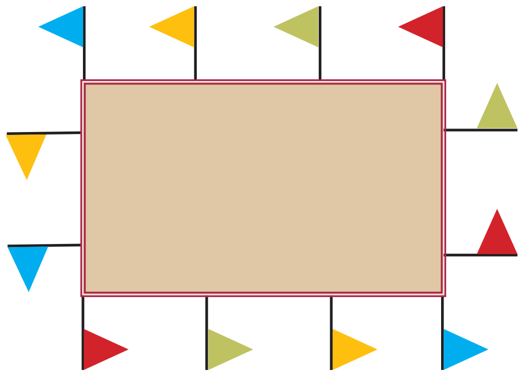

3. गीत अपनी दुकान के उद्घाटन के लिए उसे 12 झण्डियों सें सजा रही है। पहले तो उसने चित्र में दिखाए तरीके से हरेक साइड पर 4 झण्डियाँ लगाईं। लेकिन फिर उसने इन्हीं 12 झण्डियों को इस तरह लगाया कि हरेक साइड पर 5 झण्डियाँ थीं। उसने ऐसा कैसे किया होगा?

4. तुम एक ऐसे कमरे में हो जिसमें तीन दरवाज़े हैं। एक दरवाज़े के पीछे ज़हरीली गैस से भरा कमरा है। दूसरे दरवाज़े के पीछे के कमरे में हाई वोल्टेज करंट है और तीसरे दरवाज़े के पीछे कई सारे शेर हैं जिन्होंने सालों से कुछ नहीं खाया है। तुम अपने बचाव के लिए कौन-सा दरवाज़ा चुनोगे?

फटाफट बताओ कि

एक फल ऐसा है जिसे खा भी सकते हैं, पी भी सकते हैं और जला भी सकते हैं। तुम्हें पता है?

नारियल

मैं अलबेला कारीगर
काटूँ काली घास
राजा, रंक और सिपाही
सिर झुकाते मेरे पास।

(नाई)

मिट्टी का बनाया मकान
लोहे की छत लगाई
सुबह शाम उस घर में
रोजाना आग लगाई।

(तवा और चूल्हा)

एक साथ आए दो भाई
महफिल उनने खूब जमाई
पीटो तब वह देते संगत
फिर आए महफिल में रंगत

(तबला)

	1		3	8		2	7
		7	8	1			
	7	5			1	8	
8							5
			4	5			
	2	3			4	6	
1						7	4
6		4	7		8		1

सुडोकू-11

दिए हुए बॉक्स में 1 से 8 तक के अंक भरना। आसान लग रहा है न? पर ये अंक ऐसे ही नहीं भरने हैं। अंक भरते समय हमें यह ध्यान रखना है कि 1 से 8 तक के अंक एक ही पंक्ति और स्तम्भ में दोहराए न जाएँ। साथ ही साथ, बॉक्स में तुमको आठ डब्बे दिख रहे होंगे। ध्यान रहे कि उन डब्बों में भी 1 से 8 तक के अंक दुबारा न आएँ। कठिन नहीं है, करके तो देखो। जवाब तुमको अगले अंक में मिल जाएगा।

माथापच्ची जवाब

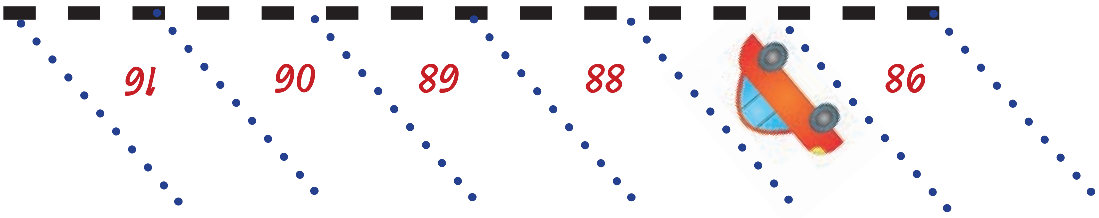

1. 87, यदि तुम चित्र को उल्टा करके संख्याओं को पढ़ो तो संख्याओं का क्रम इस प्रकार है: 91,90, 89, 88, ..., 86

2. आहना को कम से कम 3 बार प्रयास करना होगा। पहले, एक चाबी को पहले ताले में लगाकर देखेना होगा। फिर दूसरी चाबी को उसी ताले में लगाकर देखेना होगा। अब यह पता चल जाएगा कि पहले ताले की चाबी कौन-सी है (क्योंकि यदि पहली दोनों चाबियाँ उस ताले की नहीं हैं तो तीसरी चाबी पक्के तौर पर उसी की होगी)। अब बाकी बची दोनों चाबियों में से एक चाबी को दूसरे ताले में लगाकर देखने पर यह पता चल जाएगा कि कौन-सी चाबी दूसरे ताले की है।

3. गीत ने हरेक कोने पर दो झण्डियाँ व बीच में एक झण्डी लगाई, कुछ इस तरह:

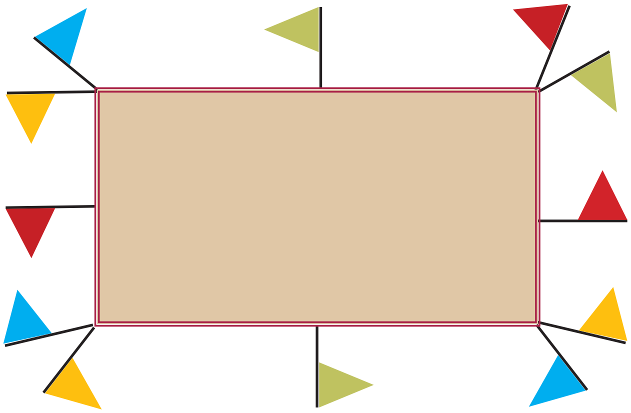

4. तीसरा दरवाज़ा, क्योंकि जिन शेरों ने सालों से कुछ नहीं खाया वह मर चुके होंगे।

अगस्त की चित्र पहेली का जवाब

1बे	श	र	2म		3ढा			4ह
ला			हु		5क	6च	ना	र
			7आ	8क		म्पा		सिं
9मो	ग	10रा		पा				गा
		त		11स	दा	12ब	हा	र
13ध	तू	रा				बू		
		14नी	ल	15क	म	ल		16चा
17गें	दा			ने				न्द
		18गू	ल	र		19का	मि	नी

सुडोकू-10 का जवाब

2	5	1	4	6	3
6	3	4	2	1	5
4	6	3	1	5	2
1	2	5	6	3	4
5	1	2	3	4	6
3	4	6	5	2	1

बाएँ से दाएँ ▶
▼ ऊपर से नीचे

चित्र पहेली

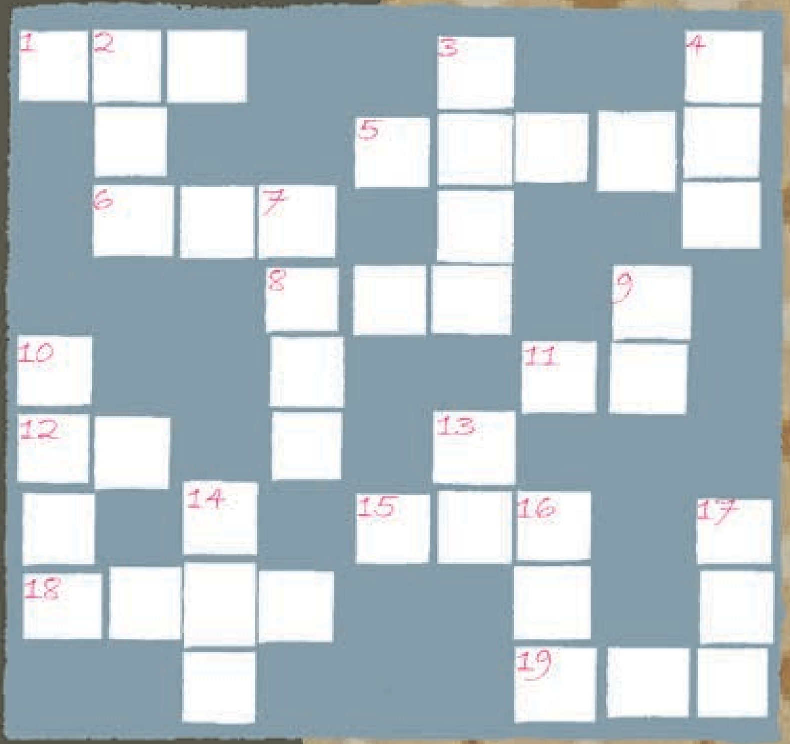

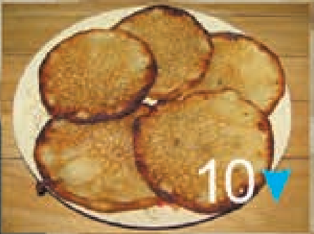

चित्र पहेली डिज़ाइन: दिलीप चिंचालकर

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म. प्र./भोपाल/261/2018-20

जगह बनाना

लोकेश मालती प्रकाश

पत्ता
कूद पड़ा है टहनी से
फिरकी करता हवा में
अपनी धुन में खोया
चल पड़ा नीचे
बिना आहट किए बैठ गया
धरती पर
तमाम पत्तों के साथ चुपचाप
चींटियों या गिलहरियों का रास्ता रोके बिना।

पत्ते जानते हैं
जगह घेरे बिना
जगह बनाने की कला।

चित्र: प्रशान्त सोनी

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म. प्र.
से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादक: विनता विश्वनाथन